जैन भारती

नवम्बर 2014 • वर्ष 62 • अंक 11 • वार्षिक ₹ 200

नई शुरुआत नया बोध

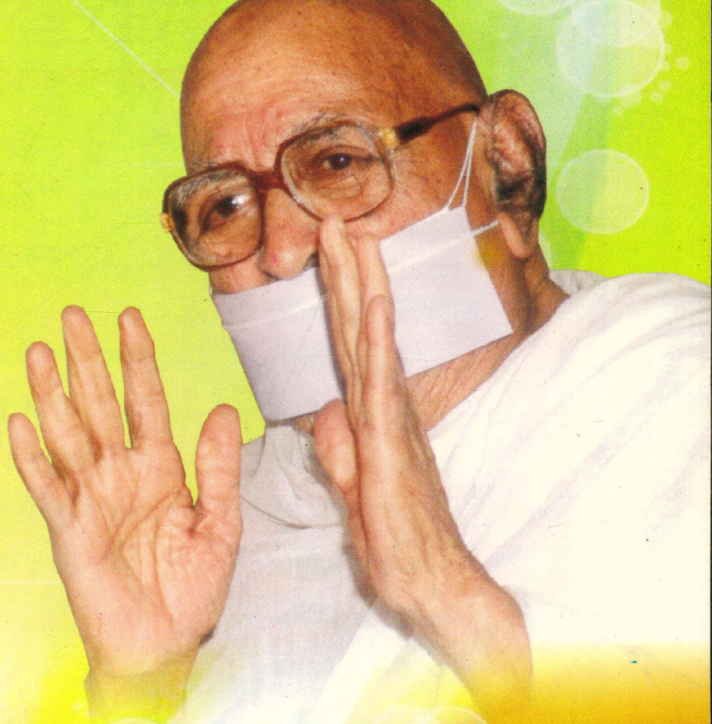

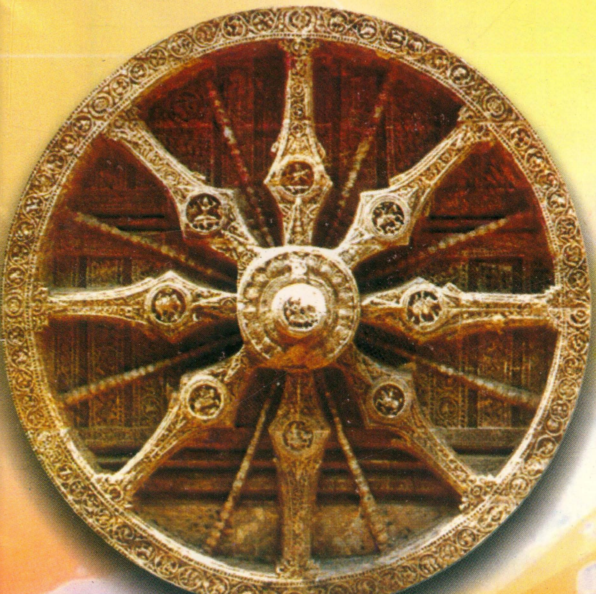

हर युग तुमको याद करेगा

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती

वर्ष 62 • नवंबर 2014 • अंक 11

संपादक
डॉ. शान्ता जैन

आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	सम्यक्त्व का दीया कैसे जले?	–आचार्य महाश्रमण	7
3.	राजतंत्र का पहला उच्छ्‌वास	–आचार्य महाप्रज्ञ	10
4.	उजालों का दरख्त चलेगा साथ-साथ	–संकलन	16
5.	मानवीय आचार-संहिता	–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	21
6.	अनुपमेय व्यक्तित्व के धनी थे गुरु तुलसी	–मुनि विजय कुमार	25
7.	आचार्य तुलसी की समाधायक चेतना	–प्रो. समणी कुसुमप्रज्ञा	27
8.	नैतिक क्रांति के सूत्रधार : आचार्य तुलसी	–प्रो. भोपाल चन्द लोढ़ा	29
9.	देहातीत होकर भी जो ला सकता है परिवर्तन	–शुभू पटवा	41
10.	मानवता के महाप्राण : आचार्यश्री तुलसी	–लक्ष्मणसिंह कर्णावट	45
11.	हर युग तुमको याद करेगा	–कन्हैयालाल छाजेड़	49
12.	विशदचरितो नाम तुलसी	–रूपचन्द सेठिया	50
13.	तुलसी वाङ्मय : अभिनव प्रस्तुति	–साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा	51
13.	'जैन समाज रत्न' से सम्मानित श्री कन्हैयालाल छाजेड़		57
14.	अहिंसा यात्रा : मंगलभावना अनुष्ठान		58

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

अपने श्रम से, मति कौशल से व्यक्ति बनाता अपना पंथ,
चरणधूलि का पावन कण-कण, निर्मित कर देता है ग्रंथ।
पद-पद पर पुरुषार्थ कहानी, पद-पद बोल रहा निर्माण,
उदाहरण तुलसी का जीवन, जिसके अणु-अणु में है प्राण।।

व्यापक दर्शन व्यापक चिंतन, व्यापक जन-संपर्क उदार,
व्यापक कार्यक्रम से निर्मित, धर्मसंघ का नव आकार।
अनेकांत सापेक्ष समन्वय, का पद-पद पर किया प्रयोग,
तुलसी जैसा तुलसी ही है, तुलसी का अपना अनुयोग।।

–आचार्य महाप्रज्ञ

स्मृति नहीं, संकल्प करें

जन्म शताब्दी वर्ष की शुरुआत में एक प्रश्न उभरता है कि गुरुदेव तुलसी को किस नए अंदाज में, नई शैली में प्रस्तुति दी जाए ताकि उनके रचनात्मक उपलब्धिभरे अवदानों की सार्थकता को लोग जान सकें, जी सके।

समाधान मिला—अखंड को क्या खंड में बांटें? शाश्वत को क्या नयापन दें? जो जैसा है, वैसे ही उसे प्रस्तुति दें। सत्य के बीच कोई दूसरा नहीं होता। इसलिए आचार्यश्री तुलसी ने आचार्य अनुशासना में जो पढ़ा, लिखा, देखा, सोचा, समझा, दिया और जीया, उन तक पहुंचना ही हमारा लक्ष्य बने।

जैन भारती का इस वर्ष कोई विशेषांक नहीं निकला और न ही कोई विशेष संदर्भ ग्रंथ। न ही हमने दुस्साहस किया उनके अमाप्य कर्तृत्व को मापने का और न ही गर्व किया असीम को सीमित सामर्थ्य में बांधने का। हां, एक कोशिश अवश्य रही कि वर्ष भर पाठकों तक आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व से जुड़े विचारों को, अनुभवों को और उन्हीं द्वारा जीये गये सच को ज्यों का त्यों पहुंचाया जाए।

जन्म-शताब्दी वर्ष पर तुलसी वाङ्मय के प्रकाशन कार्य के दौरान हमें गहराई से आचार्यश्री तुलसी को पढ़ने का मौका मिला। वे स्वयं आईना बनकर हमारे सामने आ खड़े हुए। सच को देखने के लिए आंख नहीं, दृष्टि चाहिए। आचार्य तुलसी को जब भी पढ़ना शुरू किया—साहित्य में, संस्कृति में, साधना में, संस्मरणों में, पत्रों में, संघीय संचालन में, संस्कार-निर्माण में तो मन विमुग्ध ही नहीं, विस्मय से भर गया। एक आदमी ने अपने जीवन काल में इतना सबकुछ कैसे संभव कर दिखाया!

उन्होंने न कभी समय की शिकायत की, न ही व्यस्तता का बोझ ढोया। न भीड़ ने कभी थकान दी, न ही एकांत से कभी ऊबे। हर सुबह रचनात्मक सोच का सपना जागता और हर शाम रचनात्मक उपलब्धियों के साथ संकल्प साधना में ढलता। वे रुके नहीं, झुके नहीं, थके नहीं। अनगिनत संघर्षों के बाद भी सफलता स्वयं आगे बढ़कर उनकी अगवानी करती।

एक ही व्यक्ति ने अपने प्रशासन काल में निर्माण की इतनी बड़ी दीर्घा खड़ी कर दी कि वहां तक पहुंचने के लिए हमारे जैसों को कई जन्म लेने पड़ेंगे। सचमुच! विराट् था उनका कर्तृत्व, नेतृत्व और व्यक्तित्व।

उनकी आंखों में जादुई सम्मोहकता थी। जो भी पावन सन्निधि में आता, कृतार्थता का अनुभव करता। प्रथम दर्शन में ही उनकी नजरें आगंतुक को परख लेतीं।

वे देखते नहीं, दृष्टि देते थे। वे बोलते नहीं, कर्तव्य और कर्तृत्व का बोध जगाते थे। वे लिखते नहीं, अक्षरों में शाश्वत जीवन मूल्यों को उकेरते थे। वे सोचते नहीं, दूरदर्शिता के साथ उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं का आकलन करते थे। उनका आभामंडल इतना विशुद्ध और स्वस्थ था कि उनके पास आकर बुराइयां भी शोधित/परिष्कृत हो जाती थीं। उन्होंने सबके बीच अपना सबकुछ बांटा–समय, श्रम, शक्ति, सपने, संकल्प, साधना, सिर्फ इसी लक्ष्य के साथ कि आदमी सही मायने में आदमी बने।

उन्होंने सबको निजता और नजदीकी दी। न जाने कितनों को सही अर्थों में जीना सिखाया। कितनों में आत्मविश्वास भरा। कितनों को बुराई के रास्ते से पुनः लौटाया। कितनों को तनावमुक्त किया। कितनों को वियोगजनित दुःखों से उबारा। कितनों का सम्यक्त्व सुरक्षित रखा। कितनों की टूटती श्रद्धा को थामा और कितनों को जगा कर पुनः न सोने की प्रेरणा दी।

सचमुच! हमारे लिए वे आलंबन थे। आश्वस्ति थे। डूबती किश्ती के लिए शाहिल थे।

उनमें जीने की जीवटता थी, इसीलिए रचनात्मक कार्यों की एक समृद्ध परंपरा खड़ी कर गए। वे जनकल्याणी वाणी में सबका अभ्युदय चाहते। प्रशंसा और प्रशस्ति के बीच स्व का पर्यवेक्षण करते। साधना की प्रयोगशाला में उतर कर व्यक्तित्व रूपांतरण के लिए अध्यात्म के अभिनव प्रयोग और प्रशिक्षण देते। अपने आस-पास घटने वाले पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय संदर्भों से जुड़े घटना चक्र को कभी नकारते नहीं। हर संदर्भ में अपने मंतव्य, संदेश, चिंतन और निर्णय को देने में साहसी पहल करते।

आगम वाचना का दुरूह कार्य संपादित किया। समण श्रेणी की स्थापना कर संन्यास को नए संदर्भों में व्याख्यायित किया। साध्वी समाज को प्रबुद्ध कर उनकी अस्मिता जगाई। एक नहीं, अनगिनत अवदान हैं आचार्य तुलसी की अनुशासना के, जिन्हें समझना, सार्थक व्याख्या करना और जीने की प्रेरणा पाना सही अर्थों में गुरुदेव तुलसी की सच्ची स्मृति है।

आज जरूरत है, उनके द्वारा दिए गए उपदेश हमारा चरित्र बनें। संस्कार संस्कृति बनें। आदर्श उद्देश्य बनें। कर्म कर्तव्य बनें। सपने साधना बनें।

हम सौभाग्यशाली हैं जिन्हें आचार्य तुलसी के शिष्य होने का गर्व और गौरव प्राप्त है। इसलिए उनके अवदानों की आत्मा समझ कर आचार्य महाश्रमण के नेतृत्व में जीने की नई शैली शुरू करें। निर्माण के नए पदचिह्न बनाएं।

मैं प्रणाम करती हूं उस दिव्य शक्ति को जो जीवन के हर मोड़ पर सही दिशा, सही निर्णय, सही गति, सही मंजिल के होने का विश्वास देती रही है।

–मुमुक्षु शान्ता

सम्यक्त्व का दीया कैसे जले?

आचार्य महाश्रमण

दर्शनाचार प्रवचनमाला के अंतर्गत पहला विवेच्य विषय है–'सम्यक्त्व का दीया कैसे जले?' जलता हुआ दीपक आंखों को अच्छा लगता है। जब दीपावली का समय आता है, तब घरों आदि में दीये टिमटिमाने लगते हैं। उन टिमटिमाते दीयों की अवली का नाम है दीपावली। वह दीप-पंक्ति कितनी शोभायमान प्रतीत होती है! अंधकार को भगाने के लिए दीपक की अपेक्षा होती है। अंधकार भगाने से नहीं भागता, दीपक जलाने से भाग जाता है। उजाला करना है तो दीया जलाना होगा। अंधेरे में एक दीया भी कितना काम का होता है। जब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, तब उसने एक मीटिंग बुलाई और कहा–महानुभावो! मैं तो जा रहा हूं। मेरे पीछे प्रकाश फैलाने का कार्य कौन करेगा? सब मौन थे। एक छोटा-सा दीया आगे आया और बोला–भास्कर! आप जितना प्रकाश तो मैं नहीं कर सकता, पर आपकी अनुपस्थिति में मैं अंधेरे को कुछ कम करने का या दूर करने का प्रयास अवश्य करूंगा।

सूर्य आज भी जाता है, किंतु पीछे से दीये अब कम जलाए जाते हैं। आजकल तो ट्यूबलाइट आदि अनेक साधन हैं, जिनसे अंधकार को दूर किया जाता है। यह तो बाहरी अंधकार है। भीतरी अंधकार है मिथ्यात्व का। दुनिया का कोई जीव ऐसा नहीं होगा जो कभी मिथ्यात्वी नहीं था। मुझे कोई व्यक्ति यह बता दे कि अमुक जीव कभी मिथ्यात्वी नहीं था, उस आदमी को मैं साधुवाद देना चाहूंगा। हमारे तत्त्वज्ञ संतजन हैं, साध्वियां हैं, समणियां हैं, कोई मुझे बता सके तो यह बताए कि अमुक प्राणी है जो कभी मिथ्यात्वी नहीं था, हमेशा सम्यक्त्वी ही था। मुझे तो आज तक कोई ऐसा प्राणी नहीं मिला जो हमेशा से सम्यक्त्वी था, इसलिए यह कहना चाहिए कि हमारा मूल घर तो मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व में आना मूल घर को छोड़ना है। सामान्य रूप में देखें तो हम अनादिकाल से मिथ्यात्वी रहे हैं, अंधकार की स्थिति में रहे हैं। उसमें दीया जलाने की अपेक्षा होती है। कई बार तो दीया कषाय के मंद होते-होते स्वयं जल जाता है और कई बार प्रयास के द्वारा भी सम्यक्त्व का दीया जलाया जा सकता है। जब तक अनंतानुबंधी कषाय

चतुष्क का उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होता, तब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति संभव नहीं है। अनंतानुबंधी चतुष्क के उपशम होने से औपशमिक सम्यक्त्व, क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व, क्षयोपशम होने से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। ये सम्यक्त्व के तीन मुख्य प्रकार हैं। दो प्रकार और हैं—सास्वादन सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व। कषाय का प्राबल्य सम्यक्त्व का शत्रु है, पलिमंथु है। किसी व्यक्ति का किसी के साथ कोई वैमनस्य हो जाता है और वह बारह महीनों तक नहीं मिटता है यानी बारह मास तक भी वह गांठ नहीं खुलती है तो मानकर चलें कि सम्यक्त्व को खतरा है, इसलिए जब संवत्सरी-महापर्व आता है, तब खमतखामणा करके ग्रंथिमुक्त होने की प्रेरणा देते हुए कहा जाता है कि अब तो संभलो। बारह महीनों तक खमतखामणा नहीं करने से सम्यक्त्व गिर जाएगा। कहीं कोई व्यक्ति आसन पर बैठा हो और आसन को हटा दिया जाए तो उस पर बैठा व्यक्ति गिर जाता है। सम्यक्त्व को बनाए रखने के लिए कषाय-मंदता यानी अनंतानुबंधी कषाय से मुक्त होना आवश्यक है। गुरुधारणा को स्वीकार करना भी व्यावहारिक रूप में सम्यक्त्वी बनने का प्रयास है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व है। वह हमेशा थी, वर्तमान में है और हमेशा रहेगी। आत्मा कभी अस्तित्वहीन नहीं बनती। उसमें पर्याय परिवर्तन होता रहता है। एक जन्म के बाद आत्मा दूसरा जन्म ग्रहण कर लेती है। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक आत्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं हो जाती है। इस जन्म-मरण के चक्र में प्राणी विभिन्न प्रकार के दुःख भोगता है। दुःख-मुक्ति के लिए अध्यात्म की साधना आवश्यक है। उसके लिए सम्यक् दर्शन (श्रद्धा) अनिवार्य है। उसका एक व्यावहारिक रूप है—गुरुधारणा। इसमें देव, गुरु और धर्म—इन तीनों को श्रद्धा के साथ स्वीकार किया जाता है। आवश्यक सूत्र में कहा गया है—

अरहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं।।

अर्हत मेरे देव हैं, शुद्ध साधु मेरे गुरु हैं और जिन-प्रज्ञप्त धर्म मेरा तत्त्व है, यह सम्यक्त्व मैंने स्वीकार किया है।

मैं गुरुधारणा को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूं। हम गांव-गांव जाते हैं और गुरुधारणा करवाते हैं। उसमें श्रद्धा और व्रत दोनों का योग है। श्रद्धा को गाय की उपमा से उपमित किया जा सकता है। गाय इधर-उधर कहीं भी जा सकती है, किंतु समझदार आदमी गाय को मजबूत खूंटे से बांध देता है। फिर गाय के इधर-उधर जाने का खतरा नहीं रहता। हमारी श्रद्धा रूपी गाय को ज्ञान के खूंटे से बांध देना चाहिए। वह ज्ञानयुक्त श्रद्धा मजबूत रह सकती है। भक्ति अच्छी है। भक्ति से मुक्ति का रास्ता प्रशस्त होता है। जो ज्ञानपूर्वक भक्ति होती है, उसका विशेष महत्त्व होता है।

गुरुधारणा भी एक तरह से श्रद्धा का धागा है। गुरु के प्रति आस्था हो जाती है तो वह आस्था भी आदमी को खतरे से बचा सकती है। हमारी गुरुधारणा में भी कुछ ऐसे नियम हैं जो जीवन को पवित्र बनाए रखने वाले हैं, जैसे—मैं नशा नहीं करूंगा, आत्महत्या नहीं करूंगा, परहत्या नहीं करूंगा, भ्रूणहत्या नहीं करूंगा आदि। ये नियम आदमी को बचाने वाले होते हैं। संभवतः पूज्य कालूगणी के युग की बात है। एक गुजराती भाई था। उसने गुरुधारणा स्वीकार की। कालांतर में किसी परिस्थितिवश वह आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गया। अचानक उसको याद आया कि गुरुदेव ने गुरुधारणा कराते समय मुझे आत्महत्या करने का त्याग करवाया था। उसने तत्काल अपना विचार बदल दिया।

पर्यावरण की समस्या का समाधान भी गुरुधारणा में होता है, जैसे—मैं हरे-भरे बड़े वृक्ष को जड़ से नहीं काटूंगा। यह बड़े पेड़ को जड़ से नहीं काटना कितना सुंदर अहिंसा का संकल्प है। गुरुधारणा का एक नियम है—मैं संवत्सरी का उपवास/व्रत करूंगा। आदमी खाता तो प्रायः रोज है। कभी-कभी न खाने का अभ्यास भी करे। कोई उपवास न कर सके तो एकासन करे। एक

नियम है—नवकार मंत्र का जप करना। एक माला फेरना या कम से कम 21 बार नवकार मंत्र का पाठ करना। ये नियम आचरण के अंग हैं।

हमारी श्रद्धा परम आराध्य भगवान महावीर स्वामी के प्रति है। हम अर्हत के प्रतीक के रूप में भगवान महावीर का नाम बताते हैं। यद्यपि एक प्रश्न पैदा होता है कि भगवान महावीर वर्तमान में नहीं हैं। वे तो सिद्ध हो चुके हैं। वर्तमान में तो अर्हत सीमंधर स्वामी हैं, किंतु हमारी व्यवस्था ऐसी बनी हुई है कि हम भगवान महावीर की अर्हत अवस्था को ध्यान में लाते हुए, या अर्हत अवस्था के आधार पर आज भी उन्हें अर्हत देव के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य को गुरु के रूप में स्वीकार कराते हैं। जिनप्रज्ञप्त और उसमें भी हमारे यहां तेरापंथ धर्म स्वीकार करवाते हैं। यह गुरुधारणा है। मैंने परम पूज्य गुरुदेव तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के समय में देखा कि गुरुदेव के पास नई शादी करके जो जोड़े आते, उनको गुरुधारणा करवाई जाती। शादी का समय जीवन के विकास-क्रम का विशेष मोड़ का समय होता है। मैं तो शादी को गार्हस्थ्य की दीक्षा मानता हूं। शादी के बाद गुरुधारणा कर ली जाए और उसकी साधना की जाए तो जीवन का क्रम अच्छा रह सकता है।

प्रश्न होता है—अध्यात्म का पहला सोपान कौन-सा है? सामान्य भाषा में तो अध्यात्म का पहला सोपान सम्यक्त्व है, परंतु आचार्य भिक्षु के संदर्भ में देखूं तो मिथ्या दृष्टिकोण पहला सोपान है, क्योंकि मिथ्यात्वी की करणी को भी आराधक माना गया है। वह भी मोक्ष की ओर ले जाने वाली होती है। अगर सम्यक्त्व को पहला सोपान मान लेंगे तो मिथ्यात्वी की क्रिया को कौनसा सोपान मानेंगे? इसलिए तत्त्वविद्या के आधार पर और स्वामीजी के आधार पर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को प्रथम सोपान मानना चाहिए। यद्यपि सम्यक्त्वी की तुलना में अगर मिथ्यात्वी की करणी को देखा जाए तो वह बहुत छोटी होती है। सम्यक्त्वी की जो करणी है, वही करणी कोई मिथ्यात्वी करता है तो उसका फल बहुत कम मिलता है।

तामली तापस ने साठ हजार वर्षों तक बेले-बेले की तपस्या की। अगर कोई सम्यक्त्वी इतनी तपस्या करता तो सात व्यक्ति मोक्ष में चले जाते। तामली तापस मिथ्यात्वी था, इसलिए उसको उतना लाभ नहीं मिला। हमें इस बात पर मनन करना चाहिए कि मिथ्यात्वी की करणी आराधिका है, परंतु सम्यक्त्वी की तुलना में उसका बहुत कम मूल्य होता है। इस बात को प्रज्ञापुरुष जयाचार्य ने बहुत सुंदर तरीके से बताया कि सम्यक्त्व के बिना हमने अनंत बार चारित्र की साधना की होगी, किंतु हमें मोक्ष नहीं मिला। अभी हमें सम्यक्त्व और चारित्र दोनों प्राप्त हैं। हम बड़े सौभागी हैं। अब यदि हम समता के साथ वेदना आदि को सहन करेंगे तो हमें सवाया लाभ मिल सकेगा। सम्यक्त्व शून्य आचार का अल्प मूल्य है और सम्यक्त्व युक्त आचार का बहुत बड़ा मूल्य होता है।

जन-जन में या जहां उचित हो वहां हम बात करें और सम्यक्त्व का दीया जलाने का प्रयास करें। कषाय किसका कितना मंद है, यह तो निर्णय करना कठिन है। निश्चय में केवली भगवान जानें, परंतु हम व्यावहारिक सम्यक्त्व को बताने का, धराने का प्रयास करें। सम्यक्त्व-प्राप्ति के बाद निश्चित रूप से कभी न कभी हमें मोक्ष प्राप्त हो सकेगा। ❑

राजतंत्र का पहला उच्छ्वास

आचार्य महाप्रज्ञ

परिवर्तन दो स्तरों पर होता है–एक बाहर के स्तर पर और एक भीतर के स्तर पर। बाहर हवा बदलती है, मिट्टी की शक्ति बदलती है। उपजाऊ शक्ति या मिठास की शक्ति बदलती है। पेड़ों की शक्ति बदलती है। प्रकृति के जितने बाहरी तत्त्व हैं, उन सबमें परिवर्तन आता है। साथ-साथ मनुष्य के भीतर भी परिवर्तन होता है। परिवर्तन कभी एक तरफ नहीं होता, दोनों ओर होता है। जहां भी परिवर्तन मालूम पड़े, वहां ध्यान दें–बाह्य स्थिति बदल रही है तो भीतर में भी परिवर्तन आ रहा है।

प्रसिद्ध कहानी है। राजा जंगल में भटक गया। प्यास से व्याकुल हो गया। आखिर एक गन्ने के खेत में पहुंचा। खेत में बुढ़िया बैठी थी। राजा ने कहा–'बुढ़िया मां! प्यास लगी है, रस पिलाओगी।'

उसने कहा–'हां बेटा! पिलाऊंगी।' एक गन्ना हाथ में लिया, रस निकाला, प्याला भर गया और उसको दे दिया। पीया, बड़ा मीठा लगा। राजा ने सोचा–'इतना बढ़िया रस है, इतना मीठा है और इस पर कर नहीं है, अवश्य कर लगाना चाहिए।' भीतर में परिवर्तन शुरू हुआ, कहा–'बुढ़िया मां! एक प्याला और पिलाओगी।' पूरा गन्ना पीला किंतु इस बार प्याला आधा ही भरा। राजा ने कहा–'यह क्या हुआ? पहली बार तो प्याला भर गया था, इस बार आधा ही हुआ।' बुढ़िया बोली–'लगता है मेरे देश के राजा की नीति खराब हो गई है।'

आप निष्कर्ष निकालें–इधर गन्ने का रस और उधर राजा की नीति–दोनों का संबंध है। आदमी बदला, आदमी के भीतर का भाव बदला तो गन्ने का रस भी बदल गया। जब बाहर का परिवर्तन होता है तब मान लें–भीतर में भी परिवर्तन हो रहा है। भीतर में परिवर्तन हो रहा है तो समझ लें–प्रकृति में भी परिवर्तन हो रहा है।

यौगलिक युग में स्थितियां बदलीं और कल्पवृक्षों की शक्तियां घट गईं। वे कम देने लग गए। जैन साहित्य में बहुत सुंदर वर्णन किया गया है–किस प्रकार काल दोष के कारण कल्पवृक्षों का प्रभाव घटना शुरू हो गया, उनकी शक्ति कम होनी शुरू हो गई। वह ताकत नहीं रही कि जो मांगे, वह दे। दूसरी ओर उन युगल पुरुषों में क्रोध आदि बढ़ने भी शुरू हो गये। क्रोध बढ़ा, अहंकार भी बढ़ा, माया-कपट भी बढ़ा, लोभ भी बढ़ना शुरू हो गया। साथ में अपराध भी थोड़े-थोड़े शुरू हो गये। छीना-

झपटी, एक-दूसरे पर आक्रमण और अतिक्रमण–ये सारी घटनाएं शुरू हो गईं।

आप दोनों की तुलना करें कि बाहर का परिवर्तन और भीतर का परिवर्तन। प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है, वृक्षों की शक्ति घट रही है, भूमि की शक्ति घट रही है और कषाय बढ़ रहा है। एक घट रहा है और एक बढ़ रहा है। आंतरिक भावों में उद्वेलन होने लगा। क्रोध भी बढ़ गया। पहले यौगलिकों को क्रोध नहीं आता था। अब क्रोध भी आने लग गया। एक-दूसरे से झगड़ा भी करने लग गये। जिसका कल्पवृक्ष ठीक काम कर रहा था, उसको अहंकार भी आने लग गया। माया भी शुरू हो गई। कोई मेरे कल्पवृक्ष को देख न ले। कैसे छिपा सकूं? यह मायाजाल भी थोड़ा-थोड़ा बिछना शुरू हो गया। लोभ भी बढ़ गया। उसे कोई ले, न ले, कोई दूसरा उसका उपयोग न करे। कोई आदमी आकर उसकी छांह में बैठ न जाये। इतना स्वामित्व, इतनी आसक्ति और इतना लोभ–यह स्थिति बन गई।

जब काल बदलता है, भाव बदल जाता है। भाव बदलता है तो काल बदल जाता है। दोनों का योग मानना चाहिए। हम जिसको आज कलिकाल कहते हैं, वह कलिकाल क्या है? वह कलिकाल है भावों का परिवर्तन। जैसे-जैसे आदमी का भाव बदलता है, काल कलि बन जाता है। जैसे-जैसे काल का दोष आता है, भाव बदलने शुरू हो जाते हैं।

तर्कशास्त्र में दो शब्द आते हैं–उपादान और निमित्त। एक मूल कारण होता है। एक निमित्त कारण होता है। परिवर्तन के चार निमित्त होते हैं–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। आगम ग्रंथ का वाचन चल रहा था। उसमें एक प्रसंग आया–मुनि कपड़ा लाए। वह कपड़ा साध्वियों को सीधा न दे, पहले उसकी जांच करे, एक सप्ताह तक परीक्षा करे। जो स्थविर मुनि हैं, वे स्वयं कपड़े को ओढ़कर देखें कि यह कपड़ा अशुद्ध भाव पैदा कर रहा है या शुद्ध भाव? वस्त्र का बड़ा विज्ञान है। केवल इतना ही नहीं है कि कपड़े को खरीदा, अच्छा लगा, इसलिए पहन लिया। एक कपड़ा ऐसा होता है कि पहनने पर सारे भावों को बिगाड़ देता है, अहंकार पैदा कर देता है, लड़ाई-झगड़ा शुरू करा देता है। एक कपड़ा पहना, घर में कलह शुरू हो जाता है। एक कपड़ा पहना, कलह होता है, वह मिट जाता है। यह द्रव्य का प्रभाव हमारे भावों पर, मन पर होता है।

क्षेत्र का प्रभाव भी होता है। आजकल वास्तु विद्या का महत्त्व बढ़ रहा है। वास्तुशास्त्री बताते हैं–इस कोने में बैठो तो तुम्हारा कोई काम सफल नहीं होगा। स्थान बदल दो तो तुम्हारे सब काम सफल हो जायेंगे।

इसी प्रकार काल का भी प्रभाव होता है। कोई काल का ऐसा दोष आया कि सारी स्थितियां बदलनी शुरू हो गईं। जो भाव नहीं थे, कषाय नहीं थे, वह कषाय उत्पन्न हो गया। यौगलिकों ने सोचा–क्या करें? आज तक कभी समस्या देखी नहीं, उलझन आयी नहीं। कभी अभाव नहीं देखा, कभी भूखे नहीं रहे। जिनकी कभी कल्पना नहीं की थी, वे स्थितियां सामने आ रही हैं।

परिस्थिति चिंतन पैदा कर देती है। चिंतन का विकास समस्या के क्षणों में होता है। हम मानते हैं कि समस्या का होना बुरा है। यह एक दृष्टिकोण है, पर दूसरा दृष्टिकोण यह है कि समस्या का होना बहुत अच्छा है। अगर समस्या न हो तो आदमी के चिंतन का विकास भी नहीं होता। समस्या आती है तो सोचने का अवसर मिलता है, आदमी चिंतन करता है। उसका रास्ता खोजता है। कोई न कोई उपाय निकाल लेता है। आप समस्या को बुरा न मानें। वह निमित्त है, उपयोगी है और हमारे लिए काम की बन सकती है।

प्रश्न है–उपयोग कैसे करें? समस्या आई और घुटना टेंक दिया, निराश होकर बैठ गये तो समस्या बुरी हो गई। समस्या आई और समाधान खोजने का प्रयत्न किया तो वह समस्या भी हमारे लिए अच्छी बन गई। पूज्य गुरुदेव के जीवन में बहुत सारी समस्याएं आईं। गुरुदेव बहुत बार कहते–'जब मैं आचार्य बना तब मैंने सोचा–तेरापंथ धर्मसंघ है, एक अनुशासन है, सब

साधु-साध्वियां एक इंगित को मानकर चलने वाले हैं और उसमें कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस, आनंद ही आनंद है, किंतु जब संचालन शुरू किया तो पता चला कि वह कोरा सपना था।' न जाने कितनी समस्याएं आती हैं। मनुष्य के मस्तिष्क को संचालित करना सबसे बड़ी समस्या है। यह कोई यंत्र तो है नहीं। मनुष्य के मस्तिष्क को संचालित करना और उसमें भी साधुओं के मस्तिष्क को संचालित करना बहुत बड़ी समस्या है। पुराने जमाने में हमारे साधु कहते थे–'इन मोडों को एक साथ रखना सिर पर मतीरे के भारे को बांधना है।' घास का भारा तो बंध सकता है, पर मतीरों का भारा कैसे बंधे? बड़ा कठिन होता है। सब प्रकार के लोग होते हैं। कुछ अच्छे होते हैं, कुछ सामान्य। कुछ का चिंतन विधायक होता है, कुछ का चिंतन नकारात्मक। उस स्थिति में सबको साथ लेकर चलना कितनी बड़ी समस्या है।

जहां समस्या आती है वहां साथ में विकास भी होता है। जिस व्यक्ति के जीवन में कोई समस्या नहीं आती, वह कोरा रह जाता है, विकास नहीं कर पाता। विकास वही व्यक्ति कर पाता है जो समस्या को झेलना जानता है, समस्या का सामना करना जानता है, समस्या का समाधान खोजना जानता है।

समस्या को आप दुःख न मानें। समस्या दुःख नहीं है। जहां समस्या को दुःख मान लिया वहां आदमी निकम्मा हो गया। जहां माना कि समस्या का समाधान खोजना है वहां रास्ता निकल आया। समस्या और दुःख एक नहीं है। यह धारणा पक्की बन जाए तो कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

इस दुनिया में एक आदमी को प्रभावित करने वाले कितने तत्त्व हैं? अभी कुछ समय पहले मैं एक पत्रकार से बातचीत कर रहा था। किसी प्रसंग में मैंने कहा–'आप क्या सोचते हैं?' उन्होंने कहा–'कोई ग्रह दशा भी हो सकती है।' 'क्या आप भी मानते हैं?' प्रश्न पूछा। पत्रकार बोला–'पहले तो नहीं मानता था, पर अब मानता हूं।'

जो व्यक्ति गहराई में जाता है वह ग्रह दशा को भी अस्वीकार नहीं करता। हमें खगोल प्रभावित करता है, भूगोल प्रभावित करता है, आसपास का वातावरण प्रभावित करता है। जब व्यक्ति सचाई की ओर जाता है, ज्ञान विकसित होता है, तथ्यों को जानता है। उसे पता चलता है कि हमें प्रभावित करने वाले कितने तत्त्व हैं, जिनसे प्रभावित होते हैं। उनका समाधान खोजने वाला व्यक्ति अपना मार्ग बना लेता है और जो समाधान खोजना नहीं जानता, वह बीच में ही अटक जाता है, भटक भी जाता है, रुक भी जाता है, उसके पैर ठिठक जाते हैं।

भीतर का परिवर्तन और बाहर का परिवर्तन–दोनों में बहुत गहरा संबंध है। यौगलिक युग में बाहर का परिवर्तन शुरू हुआ तो भीतर का परिवर्तन भी शुरू हो गया। युगल मिले, सोचा–ऋषभ में ज्ञान बहुत अच्छा है। वे हर बात का सटीक उत्तर देते हैं, सुंदर समाधान देते हैं। यह स्वाभाविक था, क्योंकि अन्य सब लोग इंद्रिय चेतना वाले थे, ऋषभ के पास अतींद्रिय ज्ञान था। वे अवधिज्ञान से उत्तर देते थे। जो समस्या आती, उसका साक्षात उत्तर दिखाई देता। वे ऋषभ के पास आये। ऋषभ ने पूछा–'बोलो भाई! क्यों आये हो?'

'स्वामी! क्या बतायें? बड़ी कठिनाई है। उस कठिनाई को सुलझाने के लिए हम आपके पास आये हैं। आप देखिए–यह क्या हो गया है? स्वामी! हमारी स्थिति यह हो गई है कि भूख के कारण दिन में भी तारे दीखने शुरू हो गये हैं। भूख बुझ नहीं रही है। बड़ी समस्या है। इन वृक्षों से भोजन पूरा नहीं मिलता। इसका और कोई विकल्प है क्या? जहां समस्या आती है वहां विकल्प खोजना होता है। आप विकल्प बतायें कि हम क्या करें? कल्पवृक्ष तो रूठ गये हैं, कृपण बन गये हैं। अब इन वृक्षों से भूख की समस्या का हल निकालना हमारे लिए मुश्किल हो गया है। आप कोई विकल्प बतायें।'

'प्रभो! एक समस्या यह हो गई कि यौगलिकों में लड़ाई-झगड़ा शुरू हो गया, अतिक्रमण शुरू हो गया।

जिसकी लाठी, उसकी भैंस–यह बात शुरू हो गई। अब कोई कहने वाला नहीं, सुनने वाला नहीं। कोई किसी की बात मानता नहीं। इस विषम परिस्थिति में हम क्या करें? हमें इसका समाधान दें।'

हो क्षुब्ध परिस्थति उद्वेलित मन में,
श्री ऋषभ पास आए मिल युगल विजन में।
बोले, आश्वासन एक मात्र तुम स्वामी!
है जटिल समस्या देखो अंतर्यामी!
सुषमा में परिवर्तन की अविरल धारा,
नीति त्रय का अतिवर्तन बना किनारा।

ऋषभ ने यह सारी स्थिति सुनी, दो मिनट अंतर्ध्यान किया। अवधिज्ञान का, अतींद्रियज्ञान का भी उपयोग करना होता है। जब उसका उपयोग किया जाता है, भीतर से ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलती हैं। दो मिनट पश्चात् ऋषभ ने कहा–इस सारी समस्या का समाधान है राज्य की स्थापना और राजा की स्थापना।

यह राजतंत्र के इतिहास का पहला दिन था। राजतंत्र क्यों स्थापित हुआ? इस पर अनेक पश्चिमी दार्शनिकों ने विचार किया। राजनीतिशास्त्र में भी इस पर चिंतन किया गया। निष्कर्ष यही आया–जब मनुष्य ने अन्याय करना शुरू कर दिया, अतिक्रमण करना शुरू कर दिया, जबर्दस्ती दूसरे की वस्तु पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया, अपराध शुरू हो गये। उस समय सबने सोचा–बिना राजतंत्र के इसका प्रतिकार नहीं किया जा सकेगा। इस अवस्था में राजतंत्र का प्रारंभ हुआ। इतिहास की भाषा में आदमी जंगली था। ऋषभ चरित्र की भाषा में कहें तो आदमी यौगलिक था। जंगल में रहता था, जंगली जीवन था और जंगल से पूरा काम होता था। जब जंगल से पूरा काम होना बंद हुआ, तब स्थितियां जटिल बनीं। उस स्थिति में अपेक्षा हुई राजतंत्र की।

जहां अनुशासन है वहां यह चेतना नहीं होती कि मुझे यह नहीं करना चाहिए। करना तो चाहता हूं, पर लोग करने नहीं देते। अनुशासन का डर होता है। आत्मानुशासन का डर नहीं होता। आत्मानुशासन में तो विवेक होता है। अपना विवेक और अपना नियंत्रण। अनुशासन में पुलिस का नियंत्रण, सैनिक का नियंत्रण, राज्य कर्मचारी का नियंत्रण या लोक-लाज का नियंत्रण। बाहर का नियंत्रण होता है तो आदमी गलत काम से बचता है। अगर सब लोग आत्मानुशासी होते तो राजतंत्र की कोई आवश्यकता नहीं होती किंतु जब देखा कि यौगलिक भी अतिक्रमण कर रहे हैं, छीना-झपटी कर रहे हैं तब राजतंत्र की आवश्यकता हो गई।

कहा गया–एक राजा की जरूरत है, जो शासन करे, सबको नियंत्रण में रखे और दंडशक्ति का प्रवर्तन करे। अब तक शब्द की शक्ति थी। वह निष्प्रभावी हो गई। ऋषभ ने कहा–अब हाकार, माकार और धिक्कार नीति से काम नहीं चलेगा। अब तो राज्य, राजा और दंड नीति का प्रवर्तन होगा। प्रजा दंड के बिना कार्य नहीं करती। जब तक भय पैदा नहीं करोगे, काम ठीक नहीं होगा। भय पैदा करना जरूरी है।

एक बड़ा विचित्र प्रश्न है। अध्यात्म में सिखाया जाता है कि डरो मत, डराओ मत। यह अहिंसा का सूत्र है, अध्यात्म का सूत्र है, किंतु राजनीति में सूत्र उलटा हो गया–डरो और डराओ। यह राज्यतंत्र का सूत्र बन गया। मौखिक बात नहीं मानेंगे, उपदेश नहीं मानेंगे, कही हुई बात नहीं मानेंगे, किंतु डंडे का बल है, दंड की शक्ति है और डर है कि डंडा पड़ेगा, मार पड़ेगी, कारावास में जाना होगा और मौत तक की बात आगे आ जायेगी तो आदमी थोड़ा संकोच करता है, खुलकर अपराध नहीं करता। ऋषभ ने कहा–अब राज्य शक्ति के बिना काम चलने वाला नहीं है।

स्वतंत्रता सबको प्रिय होती है। कोई परानुशासन नहीं चाहता। जब भूख की वेदना असह्य बनी तब उसके समाधान के लिए शासक की अपेक्षा प्रबल बनी। यदि कल्पवृक्ष कृपणता नहीं दिखलाते, यदि मनुष्य बांट-बांट कर खाता तो राजतंत्र का शासन मानव के सिर पर आसन नहीं बिछा पाता। स्मृति और मति की तरतमता, आवेश की प्रबलता, आचार-विचार की विषमता–इन सबने दंड शक्ति को निमंत्रण

दिया। स्वतंत्रता का उच्छ्वास लेने वाले प्राणी को राजतंत्र में अपनी समस्याओं के समाधान की आशा परिलक्षित हुई।

मानव-मानव में स्मृति-मति की तरतमता,
आवेश और आचार-विचार विषमता।
इस सहज विषमता ने ही दिया निमंत्रण,
अस्त्रों-शस्त्रों को, दंड-शक्ति को क्षण-क्षण।।

यौगलिकों ने पूछा–'राजा क्या होता है?' वे कुछ नहीं जानते थे, बस अपना ही राज्य था। कोई राज्य नहीं, कोई राजा नहीं। ऋषभ ने सारी बात समझाई– 'शासन-तंत्र होता है, उसके पास शक्ति होती है। वह अपराध को रोकता है, नियंत्रण करता है और जनता के दुःख-दर्द को सुनता है। शासन-तंत्र का संचालन करने वाला राजा होता है।'

यौगलिक बोले–'स्वामी! आप ही हमारे राजा बन जायें। आपका ही राज्य होगा।'

ऋषभ पिता के प्रति विनीत थे। जहां पुत्र अपने पिता के प्रति, शिष्य अपने गुरु के प्रति विनीत नहीं होता वहां असफलता ही मिलती है। जहां विनय होता है वहां सफलता मिलती है।

ऋषभ बोले–'यह मेरा काम नहीं है। तुम राजा के लिए नाभि के पास जाओ। नाभि के पास याचना करो कि हमें एक राजा चाहिए। वे जिसको कह देंगे, वह तुम्हारा राजा बन जायेगा।'

ऋषभ की बात सुन यौगलिकों ने नाभि के पास जाने का निश्चय कर लिया। सब युगल मिलकर नाभि के पास गये। नाभि ने पूछा–'क्यों आये हो आज?' यौगलिक बोले–'स्वामी! हमें राजा की जरूरत है। राजा चाहिए।' 'राजा कहां से आयेगा?' ऋषभ ने प्रश्न किया। 'आप बतायेंगे, वहां से आ जायेगा।' उत्तर मिला। फिर जिज्ञासा उभरी कि 'जरूरत क्यों है?'

यौगलिकों ने अपनी सारी व्यथा बता दी–'आज अतिक्रमण बहुत हो रहा है। यह अतिक्रमण राजा के बिना कोई रोक नहीं पायेगा इसलिए हमें राजा की जरूरत है।'

नाभि ने कहा–'बोलो, तुम किसको चाहते हो।'

'जिसे आप कह दें वही हमारा राजा हो जायेगा।'

नाभि ने कहा–'ऋषभ आज से तुम्हारा राजा है।'

हां भवतु भवतु राजा वर ऋषभ तुम्हारा,
संताप हरो पा निर्मल जल की धारा।
आह्लादित प्रमुदित युगल उछलते आए,
तब पैर धरा पर मुश्किल से टिक पाए।।
प्रभु! आज क्षितिज पर नव सूर्योदय होगा,
इन हाथों से अभिषेक नृपति का होगा।
लाए हैं सुर-सरिता का पावन पानी,
है तुमसे कोई बात नहीं अनजानी।।
मध्यस्थ और तुष्णीक ऋषभ की मुद्रा,
दस अंगुलियों में सहज भाव की मुद्रा।
सुकुमार चरण अभिषेक पाणि-पल्लव ने,
निष्पन्न किया आभा-लालित आर्जव ने।।
आकुलता ने आश्वासन का वर पाया,
वह आश्वासन ही फिर राजा कहलाया।।

सबने सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा–यही हम चाहते थे कि ऋषभ हमारे राजा बनें। सब लोग बड़े पुलकित हुए। खुशी में झूमते-झूमते आये ऋषभ के पास। हमारा काम हो गया। नाभि ने कह दिया कि ऋषभ तुम्हारे राजा हैं। आज से आप हम सब पर शासन करो।

ऋषभ ने कहा–'ठीक है। नाभि का आदेश है तो मैं इस दायित्व को निभाऊंगा।'

उस समय अभिषेक की बात संभवतः नहीं थी। पौराणिक बात यह है–देवता आते हैं और ऋषभ का राज्याभिषेक करते हैं। राज्याभिषेक किया, ऋषभ राजा बन गये।

पूछा जाए–'प्रथम राजा कौन?' तो उत्तर होगा– 'इस युग में पहले राजा ऋषभ थे।' उससे पहले राजा का नाम कोई शासक नहीं था। पहले कुलकर प्रथा थी। कुलकर प्रथा समाप्त हो गई, ऋषभ पहले राजा बने। ❑

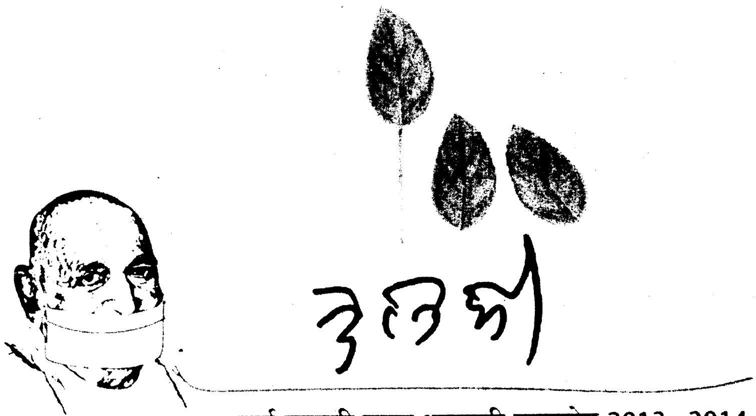

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

तुलसी जन्म शताब्दी का वर्ष सानन्द-सम्पन्न हो रहा है। इस वर्ष को निमित्त बनाकर अनेक सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रमों की संयोजना की। सबका लक्ष्य एक ही था कि हमारे भीतर बदलाव की चेतना जागे। हम संयम की ओर पदन्यास करें। जीवन भर संस्कारों का योगक्षेम होता रहे।

आज तुलसी हमारे बीच नहीं है, पर कौन कहता है कि तुलसी आज हमारे बीच नहीं है? वे हमारे बीच में हैं, उनका अस्तित्व हमारी धड़कनों में दिल की तरह धड़कता है। हवा, प्रकाश और धूप-छांव की तरह अहसास होता है। हर कदम पर उजालों के दरख्त की तरह वह साथ-साथ चलता है। वे हमेशा रहेंगे पर उन्हीं लोगों के साथ, जो उन्हें समझने की शुरुआत करेंगे, उनकी चाह, उनके सपने, उनके संकल्प उनकी साधना, उनकी संकल्पना को खुद जीकर बतायेंगे।

एक अवसर था जन्म शताब्दी वर्ष का, जिसने वर्षभर हर मोड़ पर हमें याद दिलाया कि हम तुलसी के नाम पर कुछ करें। औरों के लिए न भी करें, पर स्वयं के लिए तो कुछ करें, यह सोचकर उनके विचार, दर्शन, साधना के प्रयोग-प्रशिक्षण, क्रांति के लिए पदचिह्न, संकल्प, सपने सभी का स्मृतियों में छायांकन बना रहे, इसलिए जैन भारती श्रद्धा के दीवट पर कुछ दीए जला रही है, जिनकी रोशनी में हम अपने रास्ते उजालें, लक्ष्य तक पहुंचे। प्रस्तुत है चिन्तन का शतक....

उजालों का दरख्त चलेगा साथ-साथ

- अहिंसा में मेरा अंधविश्वास नहीं है। वह मेरे जीवन की प्रकाश-रेखा है। मैंने उससे अपने जीवन को आलोकित करने का प्रयत्न किया है। मैं उससे बहुत संतुष्ट और प्रसन्न हूं।
- मैं अहिंसा की अंतर्यात्रा में विश्वास करता हूं। मैं अपने विषय में अनुभव करता हूं कि जैसे-जैसे मैंने अहिंसा का मर्म हृदयंगम किया है, वैसे-वैसे अधिक मध्यस्थ बना हूं।
- हमारा यह दावा नहीं कि हम दुनिया में शांति स्थापित कर ही देंगे, पर हमारा यह विश्वास अवश्य है कि हमारी अहिंसा-साधना के प्रयोग पूरे विश्व की शांति-कामना के साथ जुड़े हुए हैं।
- मेरा अपना अभिमत है कि जब तक हिंदुस्तान के पास अहिंसा की संपत्ति सुरक्षित है, कोई भी भौतिकवादी शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकेगी।
- व्यथित रहकर जीना भी कोई जीना है, मैं एक वर्ष जीऊं, पांच वर्ष जीऊं या पचास वर्ष जीऊं, इसकी मुझे चिंता नहीं। जितना जीऊं, प्रसन्नता और आनंद से जीऊं, यही मेरी आंतरिक चाह है।
- मैं एक साधक हूं। मेरा लक्ष्य है वीतरागता। मैं अपने लक्ष्य की दिशा में निरंतर गतिशील रहना चाहता हूं।
- मैं जानता हूं, मेरे पास न रेडियो है, न अखबार और न आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन ही और न मैं इन सबका उपयोग ही कर सकता हूं। लेकिन मेरी वाणी में आत्मबल है, आत्मा की तीव्र शक्ति है। मुझे अपने संदेश के प्रति गहरा आत्मविश्वास है। फिर कोई कारण नहीं कि मेरी यह आवाज जनता के कानों से नहीं टकराए।
- मेरी अभीप्सा है कि मैं हर स्थिति में सम रहूं, भले मुझे जीवन भर भी संघर्ष क्यों न झेलना पड़े।
- मैं तो बहुत बार यह सोचता हूं कि साधना करनी ही न पड़े, सहज हो जाए, वह स्थिति सुंदर है।
- सत्य की अनुपालना के लिए मुझे प्रशिक्षण मिला–डरो मत। न बुढ़ापे से डरो, न रोग से डरो, न शोक-संताप से डरो और न मौत से डरो।
- हम सुविधावादी नहीं हैं। हमने कठिनाइयों से गुजरना सीखा है। मुसीबतें झेलकर जो काम किया जाता है, वह अधिक ठोस और स्थायी होता है।

- मैं भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में अधिक विश्वास करता हूं, इसलिए निश्चिंत हूं।
- मेरे कदम निरंतर सत्य की राह को मापते रहें और मैं अपने जीवन के एक-एक क्षण को सफल सार्थक करूं, यही आशा और अभीप्सा है।
- मुझे चर्चा में कोई पराजित करने के लिए आता है तो मैं विनम्रता से उसे स्वीकार कर लेता हूं किंतु अपने सत्य विचारों को दृढ़ता से रखता हूं।
- ओढ़ी हुई उपाधियां मुझे व्याधियां लगती हैं। मैं किसी भी उपाधि को ओढ़ने में दिलचस्पी नहीं रखता।
- मेरा प्रयत्न मेरे भीतर संकल्प के साथ होता है, मैं संकल्प की शक्ति से परिचित हूं, इसलिए उसकी सफलता में मुझे कोई संदेह नहीं है।
- मेरा कार्य समन्वय करने का है। मैं आगे चलता हूं परंतु पीछे देखता हुआ चलता हूं ताकि साथ चलने वाले कोई पीछे न रह जाएं।
- मैं न तो गलती को दबाने के पक्ष में हूं, न फैलाने के, मैं तो उसे सुधारने के पक्ष में हूं।
- मैं कथनी और करनी की समानता में विश्वास करता हूं।
- मैं कल जितना खुश था, उतना ही आज भी हूं, मेरे लिए सभी दिवस उत्सव के हैं, सभी दिन स्वतंत्रता के हैं।
- मेरे निमित्त से किसी भी व्यक्ति का दु:ख हलका होता है, उसे धैर्य मिलता है या समाधि का अनुभव होता है तो मुझे भी आनंद की अनुभूति होती है।
- अति हर्ष और विषाद, अति श्रम और विश्राम आदि अतियों से बचे रहने के कारण मैं आज भी अपने आपको तारुण्य की दहलीज पर खड़ा अनुभव कर रहा हूं।
- मैं श्रद्धांजलि मात्र से तृप्त नहीं होता। बाहरी तड़क-भड़क और नारे आदि मुझे पसंद नहीं। मैं चाहता हूं कि श्रद्धांजलि की अपेक्षा काम अधिक हो।
- सत्य से विनम्रता और अभय से दृढ़ता मिलती है–ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।
- अगर आप मेरी बात मानें तो विवाहों में, दहेज में, नाच-गान में, बाजों में फिजूलखर्ची बिलकुल न करें, यह अपव्यय है, सामाजिक हिंसा है और विद्रोह का कारण है।
- मैंने तो अपने विरोधियों के प्रति सदैव कृतज्ञता ही ज्ञापित की है, क्योंकि उन्होंने हमारे हर काम को आसान बनाया है।
- मैं उस समझौते में विश्वास नहीं करता, जो भय या दबाव से प्रेरित हो।
- प्रशस्तियां, आरतियां, गुणगान आदि ऐसे खतरे हैं, जो कच्चे आदमी को फुसला लेते हैं, पर मैं इस भुलावे में नहीं आता हूं।
- भारतवर्ष के लिए मैं उस दिन की आशा लिए हूं, जिस दिन किसी को फांसी तो क्या जेल की सजा भी नहीं मिलेगी।
- मैं मस्जिद या मंदिर को खुदा या ईश्वर का घर नहीं मानता, उपासना का घर मानता हूं।
- कर्म में मेरी रुचि है। मेरी साधना गिरि-कंदराओं में कैद नहीं है। मैं चाहता हूं कि अकर्म के साथ अंतिम श्वास तक मैं कर्मशील बना रहूं।
- मेरा निजी अनुभव है कि सकारात्मक नजरिया व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में नई चेतना भर सकता है।
- मैं न ज्योतिष पर विश्वास करता हूं और न अविश्वास। मेरा विश्वास अपने पुरुषार्थ पर है।
- मेरे धर्म की परिभाषा यह नहीं कि आपको तोता-रटन की तरह माला फेरनी होगी। मेरी दृष्टि में आचार, विचार और व्यवहार की शुद्धता का नाम धर्म है।

- कला मुझे प्रिय है। फूहड़पन को मैं पसंद नहीं करता किंतु जिस कला में अश्लीलता की सीमाएं टूटती हैं, उसे मैं मान्यता नहीं दे सकता।
- मेरी तपस्या, मेरी साधना और मेरे विचार ही मेरे कार्य हैं।
- वास्तव में मैं गरीबी और अमीरी–दोनों की प्रतिष्ठा नहीं चाहता। मैं तो सद्गुणों की प्रतिष्ठा चाहने वाला हूं।
- मैं स्वयं को तरुण मानता हूं क्योंकि मेरा चारित्रिक बल प्रबल है।
- मैं व्यापार धंधे को नहीं रोकता, पर उसमें होने वाली अप्रामाणिकता और दुर्नीति को रोकना चाहता हूं।
- मेरी एकमात्र आंतरिक तड़प है कि कम से कम मेरे निकट रहने वाले लोगों का जीवन ऊंचा हो, साधना गहरी हो। यदि कोई मेरी दृष्टि में सफल बनना चाहता है तो सबसे पहले उसे जीवन को शुद्ध बनाने की आवश्यकता है।
- जैन विश्व भारती के माध्यम से मैं शाश्वत धर्म के तत्त्व को जन-जन तक पहुंचाना चाहता हूं।
- मैं शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूं, क्या अहिंसा इससे भिन्न है? मैं यथार्थ जीवन जीना चाहता हूं, क्या सत्य इससे भिन्न है? मैं प्रामाणिक जीवन जीना चाहता हूं, क्या अचौर्य इससे कोई पृथक चीज है? मैं शक्तिसंपन्न और वीर्यवान जीवन जीना चाहता हूं, क्या ब्रह्मचर्य इससे भिन्न है? मैं भारहीन जीवन जीना चाहता हूं, क्या अपरिग्रह इससे भिन्न है?
- मैं आपको यह कैसे समझाऊं कि विलास में सुख नहीं है। यह कोई पदार्थ होता तो मैं आपके सामने रख देता, पर यह तो अनुभव है। अनुभव बिना स्वयं के आचरण के प्राप्त नहीं हो सकता।
- जब मैं कार्य करते-करते थक जाता हूं तो दूसरा काम शुरू कर देता हूं। कार्य-परिवर्तन ही विश्राम है।
- मैं जो कुछ कार्य करता हूं, वह किसी पर अहसान या उपकार नहीं। मैं तो केवल वही करता हूं, जो मेरा कर्तव्य है और इसी में मुझे आनंद मिलता है।
- जब कभी मुझे शिखर को छूने वाली प्रतिष्ठा मिली, उसके तत्काल बाद इतना भयंकर विरोध मिला कि प्रतिष्ठा का अहं जन्म ही नहीं ले पाया।
- मैं अपनी साधना से किसी पर अनुग्रह का भार लादना नहीं चाहता, इसलिए मुझे कभी निराशा नहीं आती।
- मैं केवल दूसरों को शिक्षा या प्रेरणा ही नहीं देता जो कहता हूं, स्वयं पर अमल भी करता हूं।
- कैसी भी स्थिति-परिस्थिति आए, इस शरीर का खंड-खंड भले हो जाए, लेकिन श्रद्धा अखंड बनी रहे, यह मेरी आत्मा की भावना है।
- मैं प्राप्त पूजा से और अधिक विनम्र बनूं, साधना के पथ पर और आगे बढ़ूं, लोक-कल्याण में और अधिक निमित्त बनूं, यही संकल्प मेरे अग्रिम जीवन का प्रकाश-दीप होगा।
- मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध है कि मैं अध्यात्म को तेजस्वी और ओजस्वी देखूं। जिस दिन ऐसा होगा, मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा।
- यद्यपि मुझे एकांत बहुत प्रिय है, पर सामुदायिक जीवन उससे कम प्रिय नहीं है, इसलिए मैं रहना एकांत में और करना सबके बीच में चाहता हूं, चाहे फिर वह ध्यान का क्षेत्र हो या कर्म का।
- युग के प्रवाह में बहने को मैं अच्छा नहीं मानता, पर युग के साथ चलने को मैं समझदारी मानता हूं।
- मैं कभी इस भाषा में नहीं सोचता कि मैं ही सब करूंगा। मेरा यही चिंतन रहता है कि दूसरे भी काम करें और मैं भी कुछ काम करूं।
- बचपन से ही मेरी आदत रही है कि खाली, निकम्मा और निष्क्रिय रहना मुझे अच्छा नहीं लगता।

❑ आप गरीब मानें तो मैं सबसे बड़ा गरीब हूं और अमीर मानें तो सबसे बड़ा अमीर भी। गरीब इसलिए हूं कि पूंजी के नाम पर मेरे पास एक नया पैसा भी नहीं है और अमीर इसलिए हूं कि मेरी कोई चाह नहीं है।

❑ मेरी इच्छा रहती है कि मैंने निकट रहने वाला हर व्यक्ति हर क्षण प्रफुल्ल रहे। उसकी प्रफुल्लता मेरी मानसिक प्रसन्नता का हेतु बनती है और उसकी मायूसी मुझे व्यथित कर देती है।

❑ अनुत्साह से बुढ़ापा आता है और मानसिक चिंता से बीमारी। मैं इन दोनों से मुक्त हूं, इसलिए न तो मैंने कभी बुढ़ापे का अनुभव किया और न आगे करूंगा–ऐसा मेरा आत्मविश्वास है।

❑ मैं शाश्वत के प्रति आस्थावान हूं और इसलिए हूं कि परिवर्तन को मैं ध्रुव सत्य मानता हूं।

❑ मैं अनुभव करता हूं कि व्यक्ति के पास कमी समय की नहीं, सम्यक् नियोजन की है।

❑ एक ओर मुझे एकांत प्रिय है तो दूसरी ओर मैं भीड़ से घिरा रहता हूं। सही स्थिति यह है कि मैं भीड़ में भी एकांत की अनुभूति करता रहता हूं।

❑ मेरे किसी भी दिन को निमित्त बनाकर सकारात्मक चिंतन और रचनात्मक कार्य को बल मिलता है तो उस दिन की स्वयंभू सार्थकता हो जाती है।

❑ मेरी एक ही चाह है कि मैं जीवन भर आत्मलक्षी बन स्वहित, संघहित और धर्महित में काम करता हूं।

❑ मैं रोटी, पानी, हवा से भी अत्यंत आवश्यक मानता हूं धर्म और अध्यात्म को।

❑ मेरे मन को कोई भी परिस्थिति जल्दी से खिन्न नहीं बना सकती, क्योंकि मेरे भीतर संयम और त्याग की शक्ति काम कर रही है।

❑ हमने शाश्वत को बदलने की बात कभी सोची ही नहीं। सामयिक परिवर्तन तेरापंथ की नियति है।

❑ हम शिथिलाचार और स्वच्छंदता के पृष्ठपोषक नहीं हैं, पर इतने रूढ़ भी नहीं हैं कि देश और काल को न समझें।

❑ संघ का नियंता होने पर भी मैं प्राय: निर्भार रहता हूं। मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि मुझे कभी दायित्व का बोझ महसूस नहीं हुआ।

❑ मेरे मन की सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि आज मनुष्य-मनुष्य नहीं रहा। सुधार के लिए मेरा दरवाजा हर एक के लिए खुला है, चाहे वह भला हो या बुरा।

❑ मैं किसी पर आक्रोश व्यक्त करके अपनी शालीनता को खोना नहीं चाहता।

❑ मेरी मान्यता है कि अपने सिद्धांतों पर चलो किंतु अपनी बात मनवाने के लिए किसी को विवश मत करो।

❑ मेरा धर्म किसी मंदिर या पुस्तक में नहीं, बल्कि मेरे जीवन में है, व्यवहार में है, मेरी भाषा में है।

❑ मैं अन्न, पानी और श्वास के बिना कुछ समय तक जी सकता हूं, पर धर्म और अध्यात्म के बिना एक क्षण भी नहीं।

❑ धन और धर्म का तिए-छक्के का संबंध है। फिर भी धर्मांध व्यक्ति धन के द्वारा धर्म को खरीदना चाहते हैं, यह कैसी विडंबना है।

❑ ज्ञान श्रद्धा के बिना एवं श्रद्धा चारित्र के बिना आत्म-विकास के लिए वैसे ही अक्षम है, जैसे ध्यान स्थिरता के बिना और स्थिरता पवित्रता के बिना।

❑ परमात्मा में मेरी श्रद्धा इसलिए नहीं है कि वह मुझे सुखी बनाएगा, पर इसलिए है कि वह मेरा शुद्ध स्वरूप है।

❑ धर्म जीवन का ऐसा गुण है, जिसे जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता। अगर इसको अलग कर दिया जाए तो जीवन जड़मात्र रह जाएगा।

- मैं अन्न, पानी और श्वास के बिना कुछ समय तक जी सकता हूं, पर धर्म के बिना नहीं जी सकता। वास्तव में धर्म ही मेरा जीवन है, प्राण है, त्राण है।
- सौ बार सिद्धांतों की दुहाई देने की अपेक्षा एक बार उनका आचरण करना अच्छा है, क्योंकि आचरण से ही सिद्धांतों की उच्चता प्रमाणित होती है।
- मंदिर, मठ, चर्च, गुरुद्वारा, उपाश्रय, स्थानक, मस्जिद आदि धर्मस्थान निरुपयोगी हैं, यदि उनमें सदा जाने वाला व्यक्ति अपने आपको सही माने में धार्मिक नहीं बना सकता।
- अपना मन सबसे अच्छा धर्मस्थान है। इसमें धर्म का सतत निवास रह सकता है। अपना हृदय सबसे पवित्र मंदिर है। इसमें भगवान का सतत निवास रह सकता है।
- साधक के लिए यह जरूरी नहीं कि वह अरण्य में ही रहे या नगर में ही। जहां भी रहे, उसकी साधना अबाध रहनी चाहिए।
- एक व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ है। यह कथनी-करनी की असमानता अप्रामाणिकता है। इससे आत्महनन होता है, जो हिंसा का ही एक रूप है।
- जब अन्य लोग अपने विचारों के अनुरूप नहीं चलते हैं, तब व्यक्ति को उत्तेजना आती है, यह उसका आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।
- प्रतिकूल परिस्थिति एवं प्रतिकूल सामग्री के कारण किसी के मन में अशांति हो जाती है, यह उसका आत्महनन है, जो हिंसा का ही एक रूप है।
- ये ऋतुएं अपने नियत समय में आती हैं और चली जाती हैं। पदार्थ अपने समय और सीमा के पाबंद होते हैं। किंतु मनुष्य अपना कार्यक्रम निश्चित नहीं रखता। यह क्या चेतना का दोष है?
- मैंने देखा—जो निष्काम कर्म करता है, केवल 'निज्जरट्ठिए' बनकर कर्म करता है, उसको आत्मशुद्धि के साथ-साथ प्रासंगिक परिणाम भी सहज सुंदर मिलता है।
- मैंने देखा है अपने सात्त्विक जीवन का असर अपने आह्लाद के साथ-साथ दूसरों की क्रूरता को शांत करने में भी सहयोगी बनता है।
- किसी भी कार्य के निर्णय में खूब धैर्य व गंभीरता से गहरा चिंतन होना चाहिए, पर निर्णीत कार्य की क्रियान्विति जितनी शीघ्र हो, उतना अच्छा है।
- मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा सीमा को लांघ रही है, जबकि उसका जीवन इतना क्षणभंगुर है कि एक क्षण का भी विश्वास नहीं।
- टूट जाने के भय से संकल्प न करना एक तरह की कायरता है। क्या टूटा धागा पुनः नहीं सांधा जा सकता?
- जो समय को न निरर्थक खोता है और न दुरुपयोग करता है, वही समयज्ञ है।
- कटु सत्य कह देना सुगम है, पर कटु सत्य सुनना और सहनशील बने रहना बहुत कठिन है। वास्तव में कहने का अधिकार उन्हें ही होता है, जो सुनने के आदी हैं।
- कोई किसी को सच्चरित्र बना दे, यह संभव नहीं है। कोई किसी को दुश्चरित्र बना दे, यह भी संभव नहीं है। व्यक्ति किसी के सच्चरित्र या दुश्चरित्र होने में प्रेरक या निमित्त बन सकता है।
- साधना के क्षेत्र में अहंकार और ममकार—इन दोनों का विसर्जन अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में साधना केवल रूढ़ि रह जाती है।
- सिद्धांतों की दुहाई सब देते हैं, पर जीवन के व्यवहार में ढालना महाभारत बन रहा है। ❑

मानवीय आचार-संहिता

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

भारत के नागरिक अपनी धार्मिक मनोवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। वे सुबह-शाम मंदिरों में जाते हैं, पूजा करते हैं और अपनी मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना करते हैं। कीर्तन एवं सत्संग का सिलसिला कभी टूटता ही नहीं है। साधु-संन्यासियों के धर्मस्थानों एवं मठों पर भी लोगों की भीड़ लगी रहती है। वृक्षों एवं पाषाणों को देवों का प्रतीक माना जाता है। जिस वृक्ष या पाषण के सिंदूर लगा हुआ दिखाई देता, लोग वहां जाकर मनौतियां मनाते हैं। मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ने का क्रम भी चलता है। गुरुद्वारों में मत्था टेकने की होड़-सी लगी रहती है। चर्च के कक्ष प्रार्थना के समय दर्शनीय हो जाते हैं। उपासना का साम्राज्य चारों ओर विस्तार पा रहा है, किंतु साधना का पक्ष गौण है। पूजापाठ नियमित चलता है, पर आचरण की पवित्रता की ओर ध्यान ही नहीं जाता है। आदमी दिन भर पाप करता है और संध्या के समय मंदिर में जाकर आरती उतार लेता है। ऐसा करके वह स्वयं को पापमुक्त समझ लेता है। ऐसी विसंगतियों से भरी हुई है भारतीय लोगों की जीवनशैली।

सन् 1948, 49 की बात है। भारत आजाद हो गया, पर अंग्रेजियत का प्रभाव क्षीण नहीं हुआ। भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को भुलाया जा रहा था। राष्ट्रीय आंदोलन के समय देशप्रेम की जो भावना उभरी थी, वह पुनः दबने लगी थी। सामाजिक चेनता का जागरण नहीं हुआ था। कारखानों, बांधों, सड़कों और विद्युतकेंद्रों को ही देश की गति-प्रगति का मानदंड माना जाता था। देश के बौद्धिक लोग इस प्रकार की परियोजनाओं को मूर्त रूप देने में लगे हुए थे। पर अध्यात्मबल और चरित्रबल को पुष्ट करने वाला कोई कार्यक्रम नहीं था।

राष्ट्रीय चरित्र राष्ट्र की सबसे बड़ी शक्ति है। सेनाबल, संख्याबल और अर्थबल से भी बड़ा बल होता है राष्ट्र का चरित्र। यदि चरित्र उन्नत है तो उन्नति की सारी संभावनाएं वहां निहित हैं। चारित्रिक उच्चता के अभाव में विकास के सारे कार्यक्रम अधूरे रह जाते हैं। चरित्रबल क्षीण होने के बाद मनोबल भी क्षीण हो जाता है। इस सत्य को जानने और समझने के बाद भी चरित्र के क्षेत्र में राष्ट्र को मजबूत बनाने की दृष्टि से कोई अतिरिक्त प्रयत्न नहीं हुआ।

उन दिनों एक पैंतीस वर्षीय युवा संत का मानस आंदोलित हुआ। एक धर्मसंघ के आचार्य होने पर भी वे राष्ट्र की समस्याओं के प्रति जागरूक थे। अपने परिपार्श्व के प्रति ही नहीं, वे समग्र वातावरण के प्रति सचेत थे। युग की अपेक्षाओं और संभावनाओं को वे पहचानते थे। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के दर्पण में राष्ट्र का भविष्य देखा। राष्ट्र के चेहरे पर उभरने वाली विकृतियों को तराशना जरूरी था। तराशने के बाद भी उसके सौंदर्य की सुरक्षा के लिए उसे मूल्यहीनता की कड़ी धूप और स्वार्थपरता की गर्म लू से बचाना आवश्यक था। इस दृष्टि से उन्होंने अपनी जीवंत सोच को मानवता के हितचिंतन में समर्पित कर दिया। वे युवा संत हैं आचार्यश्री तुलसी।

आचार्य तुलसी उन दिनों सरदारशहर में प्रवास कर रहे थे। सन् 1949 का वर्ष। 1 मार्च की प्रवचन-सभा में आचार्यश्री ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा–'उजाले में अंधेरों की तलाश करनेवाले लोग भी इस दुनिया में हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता प्रकाश है, पर नैतिक मूल्यों का पतन अंधेरी खंदक है। मनुष्य आंख मूंदकर इस खंदक में छलांग लगा रहा है। क्या यह उजाले में अंधेरे की तलाश नहीं है? नैतिकता की गिरावट के साथ-साथ भारतीय लोगों में नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थाहीनता की जो लहर आई है, वह अधिक घातक है। आदमी के मन में जिस दिन यह भाव उत्पन्न होता है कि नैतिकता के आधार पर जीना संभव नहीं है, उसी दिन से वह अपनी प्राणशक्ति को खोना शुरू कर देता है। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा से पहले आस्था के निर्माण की जरूरत है। खंडित आस्था व्यक्तित्व को भी खंडित कर देती है। आप लोग अपने व्यक्तित्व को अखंड रखना चाहते हैं, उसे संवारना चाहते हैं तो एक बार आस्थाहीनता का चोगा उतार कर फेंक दें। अपने भीतर इस विश्वास को बद्धमूल करें कि नैतिकता के आधार पर भी जीवन जीया जा सकता है।'

नैतिकता के संदर्भ में अणुव्रत की परिकल्पना को रूपायित करते हुए आचार्यश्री ने कहा–'मानव जीवन की न्यूनतम आचार-संहिता का नाम है–अणुव्रत। शाब्दिक मीमांसा के आधार पर अणु का अर्थ है–छोटा और व्रत का अर्थ है–नियम। कथ्य की दृष्टि से इसका तात्पर्य है–संकल्पशक्ति का विकास। व्रत का अणु भी व्यक्ति को महान भय से उबार लेता है। अणुव्रत का लक्ष्य है–मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित कर उसे सही अर्थ में मनुष्य बनाना। इसी लक्ष्य को व्यापक परिवेश से जोड़ने पर इसका स्वरूप बनता है–शोषणविहीन और स्वतंत्र समाज की संरचना। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यक्ति-व्यक्ति को समझाना होगा। विचार-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन के लिए यह एक प्रशस्त उपक्रम है। इसके लिए मुझे ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो स्वयं अणुव्रती बनकर जन-जन में व्रत की चेतना का संचार कर सकें। इस योजना की क्रियान्विति के लिए प्रथम बार में मुझे पचीस व्यक्ति उपलब्ध हो जाएं तो मैं अपनी योजना को विस्तार दे सकता हूं।'

आचार्यश्री का क्रांतिकारी आह्वान अनेक लोगों को भीतर तक छू गया। उनमें नई आस्था और नए संकल्प ने जन्म लिया। वे अणुव्रत के आदर्शों को आत्मसात करने के लिए उतावले हो उठे। आचार्यश्री का संकेत पाकर वे खड़े हुए और उनकी मांग को क्रॉस करते हुए तिगुनी संख्या में खड़े हो गए। प्रथम पारी में इकहत्तर व्यक्तियों की टीम देखकर आचार्यश्री भी उत्साहित हुए। उन्होंने अपने कार्यक्रमों में अणुव्रत को शीर्षस्थान पर अंकित कर लिया।

अणुव्रत को मानव धर्म के रूप में विकसित करना आचार्यश्री को अभीष्ट था। इस दृष्टि से उन्होंने अणुव्रत के निर्देशक तत्त्वों का निर्धारण किया। वे निर्देशक तत्त्व ये हैं–

- मानवीय एकता का विकास।
- सहअस्तित्व की भावना का विकास।
- व्यवहार में प्रामाणिकता का विकास।
- आत्मनिरीक्षण की पद्धति का विकास।
- समाज में सही मानदंडों का विकास।

- साधनशुद्धि की आस्था का विकास।
- संयम और संकल्पशक्ति का विकास।
- सांप्रदायिक सद्भाव का विकास।
- आंतरिक पवित्रता का विकास।
- अभय, तटस्थता और सत्यनिष्ठा का विकास।
- अमूर्च्छा या अनासक्ति का विकास।
- व्यक्तिगत संग्रह और भोगोपभोग की सीमा का विकास।
- चेतना के रूपांतरण और भावात्मक परिस्थिति की प्रक्रिया का विकास।

अणुव्रत आंदोलन ने देश के कितने प्रतिशत लोगों का सुधार किया, यह लेखा-जोखा आचार्यश्री के पास नहीं है। फिर भी यह निश्चित है कि अणुव्रत के द्वारा हिंसा एवं आक्रामक नीति के विरोध में जनमत जागृत करने का अच्छा प्रयास हुआ है। हजारों-हजारों विद्यार्थियों नें अपनी तोड़फोड़मूलक वृत्तियों को रचनात्मक मोड़ देने में सफलता प्राप्त की है। अणुव्रत परीक्षाओं के द्वारा उनकी ज्ञात चेतना के जागरण तथा चारित्रिक आस्था को मजबूत बनाने की दृष्टि से ठोस काम हुआ है, हो रहा है। इस ज्ञान और आस्था को अंत तक कितने व्यक्ति सुरक्षित रखते हैं, यह शोध का विषय है। किंतु इतना तो निश्चित है कि प्रारंभ में प्राप्त संस्कारों का प्रभाव किसी-न-किसी बिंदु पर जीवन को मोड़ दे सकता है।

मानवीय एकता की भावना अणुव्रत का मूल आधार है। इसके द्वारा जातिवाद, रंगवाद आदि विषमतामूलक व्यवस्थाओं की जड़ें हिला दी गईं। अस्पृश्यता की मनोवृत्ति पर प्रहार किया गया। प्रसंग आने पर साधु-साध्वियों ने हरिजनों के घरों में प्रवास किया। अनुसूचित जाति के लोगों के संस्कार-शिविरों का आयोजन किया गया और स्वयं आचार्यश्री ने ऐसे लोगों के हाथों से भिक्षा ग्रहण कर जातिवाद की अतात्त्विकता को प्रमाणित कर दिया।

एक युग था जब धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था। अपने संप्रदाय को सही और अन्य सबको गलत माना जाता था। आचार्यश्री ने अणुव्रत के धरातल पर धर्मसमन्वय की नीति का निर्धारण किया। कट्टरता की पकड़ ढीली हुई। आज अनेक धर्मों के प्रतिनिधि एक मंच पर बैठकर सार्वभौम धर्म की चर्चा करने लगे हैं।

मनुष्य के भीतर अनैतिक चेतना के प्रवेश हेतु एक बड़ा द्वार है—व्यापार। व्यावसायिक बुद्धि और अर्थ को ही सब कुछ मानने की मनोवृत्ति ने समाज में एक शोषक वर्ग खड़ा कर दिया। धोखाधड़ी, कालाबाजारी, तस्करी आदि ऐसी खिड़कियां खोल दी गई हैं, जिनसे आदमी आसानी से आ-जा सकता है। अणुव्रती बनने वाले लोगों ने इन सब रास्तों को बंद कर रखा है। ऐसे लोग संख्या में कम भले ही हों, पर इनके पास जो नैतिक बल है, उसके द्वारा वे कठिन-से-कठिन परिस्थिति को पार कर आगे बढ़ जाते हैं।

दहेज, मृत्युभोज, बालविवाह, वृद्धविवाह, पर्दाप्रथा आदि सामाजिक कुरूढ़ियों का दंश वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन को पूरी तरह से विषाक्त बना देता है। आचार्यश्री ने इस विषमत्ता का अनुभव किया और अणुव्रत के द्वारा सामाजिक कुरूढ़ियों की रीढ़ तोड़ देने का अभियान चलाया। नया मोड़ का उनका कार्यक्रम विशेष रूप से रूढ़ियों के बहिष्कार हेतु उठाया गया कदम था।

आचार्यश्री के इस क्रांतिकारी अभियान का एक ओर मुक्तभाव से स्वागत हुआ तो दूसरी ओर खुलकर विरोध भी हुआ। सामाजिक परंपराओं में हस्तक्षेप का आरोप लगाया गया। इस विरोध का स्वर उनके अनुयायियों के बीच से भी उठा। इसका आचार्यश्री को पहले से ही आभास था। इसलिए विरोध की तीव्रता भी उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकी। आचार्यश्री का स्वभाव यह है कि वे चिंतनपूर्वक किसी काम को हाथ में ले लेते हैं तो हजार कठिनाइयों के उपस्थित होने पर भी उसे छोड़ते नहीं। अपनी इसी वृत्ति के कारण वे नए-नए स्वप्न देखते हैं, उन्हें पूरा करने की योजना बनाते हैं और उसकी क्रियान्विति कर लेते हैं।

अणुयुग की विभीषिका में आचार्यश्री ने अणुव्रत का ऐसा विकल्प प्रस्तुत किया, जो लोकजीवन के

लिए सफल आश्वासन बन रहा है। स्टारवार की तेज अफवाहों के बीच आचार्यश्री ने निःशस्त्रीकरण का पथदर्शन दिया। अहिंसा सार्वभौम की उनकी परियोजना का मूलभूत लक्ष्य यही था। इस योजना की क्रियान्विति के लिए अहिंसा के क्षेत्र में शोध, प्रयोग और प्रशिक्षण, इस प्रस्थानत्रयी को आधार बनाना अपेक्षित है।

कुछ लोगों की दृष्टि में मादक व नशीले पदार्थों का सेवन सभ्यता का अंग बनता जा रहा है। परिणाम की चिंता किए बिना विकसित होने वाली यह प्रवृत्ति शारीरिक और मानसिक रूप में कितनी घातक है, किसी से अज्ञात नहीं है। धूम्रपान, मद्यपान और अनेक प्रकार की ड्रग्स का उपयोग करनेवाली युवापीढ़ी मानसिक दृष्टि से कितनी विकृत हो जाती है, इस तथ्य को कोई स्वीकार करे या नहीं, पर इसका दुष्प्रभाव किसी एक पीढ़ी को नहीं, पूरे युग को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। आचार्यश्री ने इसकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और हजारों व्यक्तियों को व्यसन-मुक्त बनाकर मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक स्वास्थ्य का पथ प्रशस्त कर दिया।

वस्तु और विचारों की भांति सभ्यता और संस्कृति का भी आयात-निर्यात होता है। पर संस्कृति व्यक्ति के जीवन से निकलकर विदेश में निर्यातित हो जाए तो उससे कभी नहीं भरनेवाला खालीपन आ जाता है। इस खालीपन को न तो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं भर सकती हैं, और न ही विलासिता के आधुनिक साधन। भारतीय दर्शन का आदर्श त्याग और संयमप्रधान जीवनशैली है। अणुव्रत इसी जीवनशैली को विकसित करना चाहता है। आचार्यश्री का यह बहुत बड़ा सपना है। इस स्वप्न को पूरा करने के लिए उन सब लोगों को प्रयत्न करना है, जिनकी आध्यात्मिक या नैतिक मूल्यों में थोड़ी भी आस्था है। गांधीजी के सपनों का भारत भी कुछ-कुछ ऐसा ही था। गांधीजी का आचार्यश्री के साथ साक्षात मिलना नहीं हो सका था, पर देश के चरमराते हुए सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की चिंता दोनों ही महापुरुषों को थी। गांधीजी अब हमारे बीच में नहीं हैं, किंतु आचार्यश्री के विचारों में गांधीजी का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। इस प्रतिबिंब को जन-जन में बिंबित किया जा सका तो वह इस युग की मानवजाति को आचार्यश्री का महानतम अवदान सिद्ध होगा। ❑

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर **'जैन भारती'** उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, **'जैन भारती'** अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती

एक संपूर्ण पत्रिका है।

वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए

जैन भारती

पढ़ें—सबको पढ़ाएं

व्यवस्थापक

जैन भारती

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

अनुपमेय व्यक्तित्व के धनी थे गुरु तुलसी

मुनि विजय कुमार

आचार्यश्री तुलसी का जीवन सदाबहार उपवन जैसा था, जहां कभी पतझड़ नहीं आया। जिसकी शीतल छांव तले पूरी मानव जाति परम आनंद का अनुभव करती थी। वह एक ऐसा घाट था जहां पर आकर हर कोई को अपनी प्यास बुझाने का अधिकार था। वह एक ऐसा शरणगाह था जहां बिना किसी जाति, धर्म, संप्रदाय भेद के सबको त्राण और निर्भयता का अनुभव होता था।

वह महामानव अपने 62 वर्ष के संयम काल में गंधहस्ती की तरह विचरण करता रहा। विरोधों के झंझावात उसके गतिशील कदमों को रोक नहीं सके। समंदर की तरह विशाल था उसका मन, जहां किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी। सूरज की तरह चमकता था उसका भाल जिसकी तेजस्विता के सामने हर कोई पराजित हो जाते थे। चंद्रमा की तरह वह अतिशय शीतल था, जिसकी शीतलता सबके उत्ताप का हरण कर लेती थी। हंस की तरह थी उसकी प्रज्ञा जो उचित-अनुचित, करणीय-अकरणीय का भेद करने में सक्षम थी। हिमालय की तरह थी उनके व्यक्तित्व की ऊंचाई, जिसे मापने में वृहस्पति भी समर्थ नहीं था। आकाश की तरह अमाप्य थे उनके सात्विक गुण, जिनकी कल्पना स्वयं विधाता भी नहीं कर सकता था। कोयल की तरह होता था उसका संगान, जिसे सुनने के लिए लोग सदा लालायित रहते थे।

स्फटिक की तरह निर्मल था उसका चरित्र, जो हर आगंतुक को आकर्षित कर लेता था। आगमोक्त भारंड पक्षी की तरह थी उसकी जागरूकता, जो संयम की चादर को सदा उजली बनाए रखती थी। वह एक ऐसा महादीप था, जिसने अपनी लौ से लाखों-लाखों दीयों को प्रज्वलित किया। जिसका स्नेह दान पाकर आज भी वे दीपक जगमगा रहे हैं। आचारांग सूत्र में कथित वे एक ऐसा असंदीन द्वीप थे, जिनका आश्रय लेने वाला व्यक्ति सदा निर्भयता का अनुभव करता था। मिस्री-सा मीठापन था उनमें, जिनकी मिठास पास में आने वाले की कड़वाहट को धो डालती थी। मक्खन की तरह कोमल था उनका हृदय, जो शैतान को भी संत बना देता था। सद्यःउत्पन्न देव कुमार-सा था उसका सहज सौंदर्य, जो प्रथम दर्शन में ही व्यक्ति को मंत्रमुग्ध कर देता था।

इस तरह की अनगिनत उपमाओं से गुरु तुलसी के व्यक्तित्व को उपमित किया जा सकता है, किंतु तभी एक और चिंतन मेरे भीतर अंगड़ाई ले रहा है कि क्या इस महामानव को किसी भी उपमा से समग्रता के साथ व्याख्यायित किया जा सकता है? संस्कृत साहित्य में एक सूत्र प्रसिद्ध है– 'उपमा एकदेशीयः'–उपमा के द्वारा किसी भी व्यक्ति के एक पक्ष को बताया जा सकता है। उसके बहुत सारे पक्ष अछूते ही रह जाते हैं। कवि माघ ने अपने काव्य शिशुपालवध में एक प्रसंग पर बहुत सही लिखा है–

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ, नेदं सिन्धावगाधता,
अलंघनीयता हेतो, स्तमयं तन्मनिस्विनि।।

मनस्वी महापुरुष को पहाड़ की उपमा से उपमित करने से उसकी ऊंचाई मात्र प्रकट होती है, गहराई नहीं और यदि समुद्र से उपमित किया जाए तो उसकी गहराई अभिव्यक्त होती है लेकिन ऊंचाई नहीं। अतः कोई भी एक उपमा महापुरुष के लिए पर्याप्त नहीं, क्योंकि उनका चरित्र अमाप्य और अतुलनीय होता है।

शब्द की शक्ति ससीम होती है। उसके द्वारा असीम को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। आचार्य तुलसी तेरापंथ संघ के सर्वेसर्वा थे, एक चक्रवर्ती की तरह उनका शासन था। अनेकानेक अलंकरण, सम्मान सूचक शब्द का प्रयोग उनके लिए होता रहता है। 'भारत ज्योति अलंकरण, वाक्पति अलंकरण, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, हकीम खां सूरी सम्मान' आदि अलंकरण और सम्मान उनको प्राप्त हुए थे। यों कहना चाहिए कि पुरस्कार–सम्मान ऐसे महान व्यक्तित्व को पाकर स्वयं गौरवान्वित हो गए। कई बार उन अभिनंदन पत्रों को वे ससम्मान वापस लौटा देते थे। प्रेम से कहा करते थे कि मैं इन अभिनंदन पत्रों को कहां रखूंगा, मेरे पास इतनी जगह कहां है?

इस तरह की एक घटना और है। एक बार कोई वकील एक अखबार लेकर उनके पास आया, पत्र दिखाते हुए बोला–'आचार्यजी! इस पत्र में आपके बारे में काफी गलत लिखा गया है, इस अखबार के संपादक पर मुकदमा चलाना चाहिए। गुरुदेव ने उपेक्षा भाव से फरमाया, कीचड़ में पत्थर फेंकने से क्या फायदा? रायपुर और चूरू में अग्निपरीक्षा प्रकरण में आचार्य तुलसी हाय-हाय के नारे भी लगाए गए, किंतु उनका मन विचलित नहीं हुआ, क्योंकि सम्मान और अपमान से वे बहुत ऊंचे उठ चुके थे। जय-जयकार व हाय-हाय इन दोनों शब्दों को सुनकर वे स्थितप्रज्ञ साधक की तरह सदा समता में अवस्थित रहते थे।

उन्होंने विसर्जन का एक अभिनव दर्शन मानव समाज को दिया था। अपने आचार्य पद का विसर्जन करके सहज प्राप्त सम्मान को त्यागने का एक आदर्श उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया था। जहां सम्मान के पीछे सामान्य व्यक्ति जिंदगी भर दौड़ता रहता है वहां उस महापुरुष ने प्राप्त सम्मान को त्यागने का एक महान निर्देशन दुनिया के सामने रखा। सुजानगढ़ मर्यादा महोत्सव के पावन प्रसंग पर उन्होंने अपने सारे अधिकार व पूजा सम्मान के संबोधन अपने युवाचार्य को सौंप दिए और फरमाया–'मैं युवाचार्य महाप्रज्ञ को आचार्य के रूप में नियुक्त करता हूं, मैं पद के बिना स्वतंत्र साधना करूंगा।' युवाचार्यवर को खड़ा करके वे बोले–'अब तुम इस धर्मसंघ के आचार्य हो, मैं सिर्फ तुलसी हूं।' और अपने पद का त्याग कर दिया। आचार्य महाप्रज्ञजी व समग्र संघ के विशेष निवेदन पर उन्होंने गणाधिपति गुरुदेव का संबोधन स्वीकार किया। यह मात्र नवोदित आचार्य व संघ की भावना को सम्मान रखने के लिए किया था, यथार्थ में उनकी चेतना संबोधनों एवं अलंकरणों से ऊपर उठी हुई थी। यही तो था उनकी महानता का राज जिसे आज भी लाखों-लाखों लोग याद करते हैं। महात्मा शेखसादी ने बहुत सुंदर लिखा है–'किसी व्यक्ति की महानता इस बात से मत आंको की उसके खजाने में कितनी दौलत है, वह कितने ऊंचे आसन पर स्थित है, सुबह से शाम तक कितने आदमी उसके आगे सिर झुकाते हैं, पर इस बात से आंको कि उसके संसार से चले जाने पर कितनी आंखें नम होती हैं, कितने दिल रोते हैं, कितने लोग उसे याद करते हैं।'

तुलसी जन्म शताब्दी पर हम उस महामानव को श्रद्धा से याद करते हैं, शब्द हमारे पास सीमित हैं, किंतु श्रद्धा असीम है, उसी के द्वारा हम उसे अपने हृदय में अवस्थित कर सकते हैं।

उस अनुपमेय व्यक्तित्व को हम शत-शत नमन करते हैं। हम अपने सौभाग्य की सराहना करते हैं कि उस महामानव का वरदायी साया हमने भी वर्षों तक प्राप्त किया। एक पंजाबी कवि ने एक जनसभा में ठीक ही कहा था–

आनेवाली पीढ़ी तुमको रस्क करेगी ऐ लोगो,
जब उन्हें मालूम पड़ेगा कि तुमने तुलसी को देखा था।

उस महापुरुष की जन्म शताब्दी पर हर व्यक्ति संकल्प करे कि उनके आदर्शों को हम अपने जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे।

आचार्य तुलसी की समाधायक चेतना

प्रोफेसर समणी कुसुमप्रज्ञा

अनुयायी अपने नेता के प्रति तभी प्रणत होता है, जब वह उनकी समस्याओं को समाहित करके भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है। आचार्य तुलसी ने जीवन और जगत की के हर क्षेत्र की समस्याओं को समाहित करने का सम्यक् प्रयत्न किया। चाहे संघीय दायित्व के निर्वहन की कोई समस्या हो या देश काल के अनुरूप संघ को जीवंत बनाए रखने के प्रयास से कोई समस्या उद्भूत हुई हो, चाहे श्रावक समाज से संबंधित समस्या रही हो या राजनीतिक मूल्यों में गिरावट की समस्या हो, सामाजिक संघर्ष की समस्या हो या हिंसा और सांप्रदायिकता से उत्पन्न विवाद की स्थिति हो–इन सभी विकट परिस्थितियों में अविचल रहकर आचार्य तुलसी ने जिस ढंग से समस्याओं को समाहित किया, वह उनके साधक सुमेरु व्यक्तित्व का परिचायक है। सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक नंदकिशोर नौटियाल कहते थे–'यदि आचार्य तुलसी जैसे दो-चार संत धरती पर अवतरित हो जाएं तो विश्व की सभी समस्याओं का समाधान संभव है।' उन्होंने न केवल हर समय संतुलित समाधान खोजा, अपितु युग की नब्ज को पकड़कर युगीन समाधान भी प्रस्तुत किया। एक साथ अनेक समस्याएं सामने आने पर भी उनका धैर्य और संतुलन कभी विचलित नहीं हुआ।

समस्याओं के समाधान में न कभी थकान का अनुभव किया और न ही निराशा और विषण्णता का। उन्होंने अनेकों रातें वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान में समर्पित कर दीं। निम्न अभिव्यक्तियां उनके समाधायक व्यक्तित्व को प्रकट करने वाली हैं–'गांव, परिवार या समाज के स्तर पर जहां कहीं भी मनोमालिन्य होता है तो मुझे बहुत अखरता है। धार्मिक कहलाने वाले यदि छोटी-छोटी बातों में उलझते हैं तो उनकी धार्मिकता के आगे प्रश्नचिह्न लग जाता है। मैं सौभाग्यशाली हूं कि भारत जैसे पवित्र देश में मुझे जन्म मिला, उसमें भ्रमण किया, उसके अन्न-जल का उपयोग किया, लोगों की श्रद्धा एवं स्नेह को पाया। इसलिए मेरा फर्ज है कि समस्याओं के निदान और समाधान में त्याग और बलिदान द्वारा जितना बन सके, मानवता का कार्य करूं। मैंने अपने संपूर्ण संप्रदाय को इस दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया है। वे आत्मविश्वास के साथ कहते थे कि समस्या चाहे पर्यावरण की हो, शस्त्रास्त्रों की प्रतिस्पर्धा की हो, आतंकवाद की हो, गरीबी की हो, जातिवाद की हो, संप्रदायवाद की हो, नैतिक मूल्यों के ह्रास की हो या संबंधों में बढ़ती दरार की हो, उसका सर्जक स्वयं मनुष्य है, जो उसकी दुर्बलता है और समाधानकर्ता भी मनुष्य ही है। समस्या के समाधान हेतु ईश्वर का आह्वान करें, यह भी कायरता है। मैं आत्मविश्वास के साथ स्पष्ट कहना चाहता हूं कि स्वर्ग से दूत या ईश्वर का अवतरण होने वाला नहीं है, जो आपकी समस्याओं का समाधान करेगा। कोई भगवान इसके लिए निकम्मा नहीं बैठा है। भगवान भी उसकी सहायता करता है अथवा समाहित करता है, जो सबल और पुरुषार्थी होता है। स्वयं समाधान की खोज करता है। समस्याएं न आएं तो दिमाग निकम्मा हो जाएगा। मैं चाहता हूं कि समस्याएं आएं और हम हंसते-हंसते समाधान करते रहें। हम यह क्यों सोचें कि हमारे सामने समस्या न रहे। बल्कि हर समस्या से जूझने का सामर्थ्य बढ़ाते रहें, यह सोच जरूरी है। यदि हम समस्या के समक्ष अडिग रहेंगे तो कोई समस्या हमारे सामने टिक नहीं पाएगी। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी के समाधायक व्यक्तित्व की झांकी राजेन्द्र शंकर भट्ट की इन पंक्तियों में देखी जा सकती है–'कई बार लगता है कि आचार्य तुलसी जैसे लोग कह गए हैं, उन सबको

आधुनिकतम कंप्यूटर पर रखना चाहिए और प्रत्येक प्रस्तुत प्रश्न पर उसमें से उत्तर ढूंढ़ना चाहिए। अवश्य ऐसा मार्ग प्रशस्त होगा, जो गुत्थियां सुलझाएगा। चूंकि इस प्रकार का उद्बोधन शाश्वत और उस परंपरा पूरक के रूप में होता है, जो भारतवर्ष की थाती और पहचान है। आगे भी इसके संदर्भ समाप्त नहीं होंगे।' मुनिश्री सुखलाल के शब्दों में आचार्य तुलसी ऐसे आचार्य नहीं थे जो केवल अतीत से चिपके रहते हों तथा ऐसे बौद्धिक भी नहीं थे, जो अतीत से बिलकुल कटे हुए हों। उनमें अतीत और अनागत को वर्तमान क्षण में देखने/जीने का अप्रतिम भाव-बोध था, इसीलिए वे वर्तमान की समस्याओं का हल भी शाश्वत के प्रकाश में खोजने में व्याप्त रहते थे।

आचार्य तुलसी प्रत्येक समस्या का समाधान अनेकांत, सामंजस्य और सापेक्ष दृष्टिकोण में खोजते थे। पूज्य गुरुदेव ने धर्म क्षेत्र और समाज की ही नहीं, राष्ट्रीय समस्याओं की तपती आग को बुझाने में अनवरत शीतल-जल का कार्य किया। पंजाब समस्या के अंतर्गत राजीव-लोंगोवाल के ऐतिहासिक समझौते में उनकी अहम भूमिका रही। प्रतिभूति घोटाले के संदर्भ में भी उनका चिंतन नई दिशा देने वाला रहा। कई दिनों से चलने वाले संसद के अवरोध को उन्होंने अपने विशिष्ट प्रभाव से समाहित किया। साथ ही अणुव्रत के माध्यम से देश में उपजे चारित्रिक संकट को समाहित करने का प्रयत्न किया है।

उलझे हुए दिमाग वाला या स्वार्थकेंद्रित नेता किसी भी समस्या का समाधान नहीं खोज सकता। वही छोटी समस्या को उलझा देता है। गुरुदेव का मानना था कि संकुल वातावरण में रहकर भी जो पंथ का निर्धारण करके चलता है, वह द्वंद्व मुक्त रहता है, उसके सामने समस्या टिकती नहीं। पाश्चात्य विद्वान मैसलो का मानना था कि सामान्यतया व्यक्ति समस्या पर विचार करते समय स्व को केंद्र में रख लेता है तथा उसमें उलझ जाता है लेकिन आत्मसिद्ध नेता ऐसा नहीं करता। पूज्य गुरुदेव ने अपने स्व को विराट बनाकर उसे पर में विसर्जित कर दिया था, अतः हर समस्या का समाधान वे संपूर्ण मानवता की दृष्टि से करते थे।

एक पत्रकार ने जब उनसे पूछा कि आपके जीवन में इतनी विकट समस्याएं आईं, आप उनका समाधान कैसे करते हैं? पूज्य गुरुदेव ने आत्मविश्वास के साथ उत्तर देते हुए कहा–'कई बार मुझे ऐसा लगता मानो चलते-चलते रास्ते के बीच कोई पहाड़ आ गया, आगे का रास्ता कैसे पार होगा? यह चिंतन दिमाग को झकझोरता लेकिन देखते ही देखते पहाड़ टूट जाता और रास्ता पार हो जाता। अनेक बार रात की नींद उड़ जाती, बहुत सोचने पर भी समाधान का सूत्र हाथ नहीं लगता। मैं समस्या को मस्तिष्क में रखकर सो जाता हूं। प्रातःकाल उठता हूं तो पथ प्रशस्त हो जाता है। इससे मनोबल और उत्साह बढ़ता रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी के समक्ष जब कोई जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है और समाधान का कोई सूत्र हाथ नहीं लगता तो वे पूज्य गुरुदेवश्री कालूगणी की स्मृति करके समस्या उनके चरणों में समर्पित करके स्वयं निश्चिंत हो जाते। कालूगणी का संबल सदैव उनके साथ रहता था। संस्कृत भाषा में लिखी उनकी डायरी की निम्न पंक्तियां इसकी साक्षी हैं–'गुरुदेवः किं परिणमयति का च मूकसम्मतिं प्रयच्छति, गुरुकृपातः सर्वं साफल्यं भवतु, गुरुदेवः शरणमस्तु, गुरुदेवः शरणमस्तु, गुरुदेवः शरणम्, यद्भाव्यम् गुरुशरणम् आदि।'

एक दिन जैनेन्द्रजी ने पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी से पूछा–'आप लोगों की समस्याओं का समाधान करते हैं, पर आपको भी तो समस्याएं घेरती होंगी?' पूज्य गुरुदेव से उन्होंने जो समाधान पाया उसे अपनी भाषा में लिखते हुए उन्होंने कहा–'उस समस्या को मैं कहीं डाल नहीं सकता। वही मेरी परीक्षा है। वही कीमत है, जो इस पद के लिए मुझे हर घड़ी चुकानी पड़ती है, अतः यह कोई गौरव और श्रेष्ठता की जगत नहीं, घोर परीक्षण की घड़ी भी है, पर मैं अपने धैर्य और मनोबल से उनको पार कर देता हूं।'

राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, सांप्रदायिक और वैयक्तिक जितनी समस्याओं का समाधान आचार्य तुलसी ने अपनी प्रज्ञा से किया, उन सबका यदि संकलन किया जाए तो एक ग्रंथ तैयार किया जा सकता है।

नैतिक क्रांति के सूत्रधार : आचार्य तुलसी

प्रोफेसर भोपाल चन्द लोढ़ा

समाजवाद की क्रांति की पृष्ठभूमि में सन् 1914 में जनमे आचार्य तुलसी जैन परंपरा में एक ऐसे क्रांतिकारी महामानव थे, जिन्होंने धर्म की सांप्रदायिक परिधि में रहते हुए धर्म के अध्यात्म पक्ष को शोधन द्वारा उज्ज्वल और मजबूत किया तथा दैनिक जीवन में नैतिकता की प्राण-प्रतिष्ठा की। इन्हीं विचारों ने उनको नैतिक क्रांति का पुरोधा बनाया और वहीं से उनको एक अलग पहचान मिली। प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व के धनी तुलसी उच्चकोटि के दार्शनिक, आत्मद्रष्टा, प्रकांड विद्वान, प्रखर चिंतक, दूरदर्शी, लेखक, कवि, गायक, वक्ता होने के साथ-साथ जागरूक विद्यार्थी, सक्षम शिक्षक, कुशल शिक्षाविद् थे। वे अनुशासनप्रिय सफल प्रशासक थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्यों की सौरभ को फैलाने का अथक प्रयास किया। वे अध्यात्म, प्राच्य विद्या एवं आधुनिक विज्ञान के समन्वयवादी धारा के समर्थक थे। उन्हें जब कभी, जहां कहीं मौका मिला, वे खुले मन से बिना परवाह किए दार्शनिक, वैज्ञानिक, नास्तिक, राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद, समाजसेवी, देशी-विदेशी विद्वान, राजदूत आदि सबके साथ खुलकर बातचीत करते, गोष्ठियां करते और नैतिक वातावरण बनाने का प्रयत्न करते। इस युग के मूर्धन्य, शिखर पुरुष, चिंतकों आदि में से शायद ही ऐसा व्यक्ति बचा हो जो उनके संपर्क में न आया हो। उनके विचार धर्म की मर्यादा में रहते हुए प्रगतिशील थे, जिनका विरोध भी बहुत हुआ, पर उन्होंने न विरोध की परवाह की और न सिद्धांतों के साथ समझौता किया। वे विरोध को विनोद मानकर चलते रहे। विरोधी विचारों को ध्यान से सुनते और उनके प्रति सकारात्मक दृष्टि रख कर प्रगति के नए-नए मार्ग प्रशस्त करते रहे।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् आचार्य तुलसी के विचारों व उनके अणुव्रत आंदोलन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी एक पुस्तक 'Living with a Purpose' में (जिसमें उन्होंने 14 ऐसे महापुरुषों के कर्तृत्व को उजागर किया है जिन्होंने किसी विशिष्ट उद्देश्य के साथ जीवन जीया) आचार्य तुलसी के बारे में भी लिखा। उल्लेखनीय 14 व्यक्तित्वों में एक मात्र आचार्य तुलसी ही जीवित थे, बाकी 13 दिवंगत थे। डॉ. राधाकृष्णन् ने लिखा–इस समय भारत की जीवात्मा सोई हुई है, आत्मबल का अकाल है और हमारे युवक तेजी से भौतिकवाद की ओर झुकते चले जा रहे हैं। ऐसे में अणुव्रत आंदोलन ही एक मात्र एक ऐसा आंदोलन है जो नैतिक मूल्यों के प्रसाद द्वारा आत्मबल को जगाने का कार्य कर रहा है। उन्होंने आह्वान किया कि इस कार्य को बढ़ावा मिलना चाहिए ताकि समाज में सकारात्मक परिवर्तन आए।

आचार्य तुलसी ने अपने साठ साल के प्रलंब शासन काल में बहुआयामी, बहुमुखी कार्य किए। अपने धर्म को विकास के शिखर पर प्रतिष्ठित किया व समाज में एक नई नैतिक चेतना उन्मुक्त करने का भगीरथ प्रयास किया।

वे बहुत प्रभावी वक्ता थे। गीतों की प्रस्तुति अपनी सुंदर आवाज में करते थे। विभिन्न राजस्थानी लोक गीतों की रागों में अपनी कविताओं की रचनाएं कीं। उन्होंने धर्म संघों में एकता का बहुत प्रयास किया। उनके जीवनकाल में बहुत विरोध हुए। उन्होंने राजनीति क्षेत्र में व सामाजिक क्षेत्र में एकता के लिए भी प्रशंसनीय कार्य किए। उसके लिए उन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले।

ऐसी अद्भुत मेधा के धनी शिखर पुरुष को मैं जन्म से ही एक श्रावक के नाते अच्छी तरह से जानता था और श्रद्धावश उनके संपर्क में भी रहा था, लेकिन नजदीक से देखने पर जो तसवीर उभर कर आती है, उससे जुड़ने का आनंद मुझे मेरे जीवन के उत्तरार्ध में ही मिला। जैसा कि पहले बताया गया, उन्होंने सामाजिक चेतना में एक उत्क्रांति के साथ शिक्षा को नए आयाम दिए। जैनविश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय उन महनीय अवदानों में से एक है। इस विश्वविद्यालय के बनने से पहले ही व फिर बाद में अनेक बार उनसे इस विषय पर चर्चाएं हुईं। कई बार तो एक-एक, दो-दो घंटों अकेले में गहन चर्चाएं हुईं। इस प्रक्रिया में इस महापुरुष के व्यक्तित्व व कर्तृत्व की अवधारणा को गहराई से समझने का भी सुअवसर मिला। उनकी ही प्रेरणा या यों कहूं, जोर देने पर ही मैंने इस संस्थान के कुलपति का पद स्वीकार किया, और बाद में मैं उनके निकट आता गया। ऐसे विद्वान महापुरुष के निकट आने से मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा और मुझे अपने आप पर और ज्यादा विश्वास होने लगा—यह मेरे जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बन गई।

आज हम आचार्य तुलसी की जन्मशताब्दी की दहलीज पर खड़े हैं। 25 नवम्बर 2014 को आचार्य महाश्रमणजी के सान्निध्य में शताब्दी समारोह का आगाज होने वाला है। मैं भी इन ऐतिहासिक क्षणों में उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की जो झलक मेरे मन में उभरी है उसके अनुरूप श्रद्धा समर्पित करने का प्रयास कर रहा हूं।

व्यक्तित्व

आचार्य तुलसी अपने सुंदर, भव्य एवं चुंबकीय आकर्षण द्वारा दूर से ही आगंतुक को प्रभावित कर लेते थे। साधु की मर्यादा में रहते हुए, वे व्यवहारकुशल एवं वार्ताकुशल थे। वे सहजता से यूं बातचीत करते कि सामने वाला उनसे बात कर सम्मानित व प्रसन्नता महसूस करता। वार्ता करते समय वे अपनी अमृतमयी आंखों से, आत्मीयता से इस प्रकार देखते कि सामने वाले के मन व हृदय में अपनापन पैदा हो जाता। वे प्रसन्नता से जब देखते तो उनकी मुखमुद्रा इतनी सुहावनी और सम्मोहक हो जाती कि सामने वाला गदगद् हो जाता व उनकी आध्यात्मिक दिव्यदृष्टि से मोहित-सा हो जाता। वे सामने वाले को जीत लेते थे। सामने वाला ऐसे साधु जिसमें साधुत्व झलकता हो, से मिलकर, खुश होकर, प्रभावित होकर ही जाता था और वर्षों तक उस विशेष मिलन को स्मृति पटल पर रखता। उनका स्वभाव था कि वे अनुशासनहीनता के प्रसंग या गलत कार्यों के संदर्भ में काफी कठोर हो जाते, दृष्टि इतनी कठोर हो जाती कि अच्छे-से-अच्छे होशियार साधु व श्रावक भी सहम जाते थे, सावधान हो जाते थे। जहां उनके मधुर दृष्टि की चर्चा होती, वहीं उनकी कड़ी नजर की भी चर्चा होती। गलती कर उनके सामने जाने की हिम्मत कम ही लोग कर पाते थे।

कहीं भी अनुशासनहीनता व संयम में कमजोरी नजर आती तो उनके चेहरे के भावों में व आंखों में कठोरता झलक पड़ती, लेकिन उसी क्षण अगर कुछ शुद्ध प्रसन्नता देने वाली स्थिति प्रस्तुत होती तो उनका चेहरा खिल उठता था। उनकी प्रसन्न मुद्रा इतनी ओजस्वी और हृदय को छू लेने वाली होती थी कि उनके सम्मुख खड़े व्यक्तियों का मन भी गदगद् हो जाता। ये दोनों अवस्थाएं उनके व्यक्तित्व का प्राकृतिक स्वरूप था और यही उनके नेतृत्व और कर्तृत्व में झलकता था।

एक बड़े संघ के आचार्य होने के कारण उन्हें कई बार लोगों को परखना भी पड़ता था। लोगों के विचारों व मन की थाह लेनी होती थी, उनके आंतरिक अभिप्राय को समझना पड़ता था, लोगों की पहचान करनी होती थी। ऐसे व्यक्तियों से वार्ता करते समय वे सामने वाले चेहरे को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखते थे, और उस व्यक्ति की आंखों में, मन में, आते-जाते भावों को परखने की कोशिश करते थे। इसमें उनका अनुभव गहरा था और पकड़ काफी सिद्धहस्त थी। वे छोटे-छोटे प्रश्न कर सामने वाले को पूरा बोलने देते, एक बात का दूसरी बात से कितना समन्वय है, देखते थे। व्यक्ति की असली पहचान परखने के मामले में वे काफी सजग थे। कई लोगों से सीधी या परोक्ष रूप से जानकारी ले लेते थे और फिर स्वयं अपना मन बना लेते थे, लेकिन सावचेत हमेशा रहते थे, पर साथ ही विश्वास भी करते थे।

आचार्य तुलसी हर विषय पर वार्ताएं करते रहते थे, अध्यात्म का विषय हो या धर्म संघ में कुछ नया करना हो, सामाजिक परिवर्तन करना हो या विरोधियों को संतुष्ट करना हो, धर्मसंघ को चलाने में आने वाली परेशानिया हों, आदि। वार्ताओं के समय दूसरों को बोलने का पूरा-पूरा अवसर देते थे। पक्ष-विपक्ष दोनों की बात ध्यान से सुनते थे। न बीच में बोलते थे, न टोका-टाकी करते थे। सामने वाले जिस भाव से ऊंचा-नीचा बोलते, बोलने देते थे, एक जज की भांति सारी बात सुन, दूसरों के विचारों का अभिप्राय समझ अपना मंतव्य सूझबूझ व स्पष्ट रूप से जाहिर करते थे और आवश्यकता होने पर उस पर भी औरों का मंतव्य लेते थे। निर्णय या तो बतला देते या अपना निर्णय सही समय के लिए छोड़ देते थे। विरोधी भी उनके विचारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। जवाब देने और वार्ता की समीक्षा करने की उनमें विशेष कला थी।

उनके जीवन में उनकी वार्ताएं अनेक नास्तिकों से और विरोधियों से भी हुईं। सबको सहेज कर अपनी पूरी बात करने का मौका देते थे। सामने वाले के विचारों से सहमति न भी हो, तो भी वे अकसर उनके विचारों को काटते नहीं थे। कई बार गरिमापूर्ण तरीके से यह कह देते थे कि यह भी एक विचार है। विचारों की सहमति न भी हो तो कटुता न आने पाए, वातावरण सहज या आत्मीय रहे, बिगड़े नहीं, इसका वे पूरा ध्यान रखते थे। इसी कारण कालांतर में उनके विरोधी भी या तो शांत हो गए या उनके प्रशंसक बन गए।

सामने वाले के विचारों में विशेषता का आभास होने पर खुलेमन से, वात्सल्य से, उसे सहमति बताने, प्रोत्साहन देने व उन विचारों को उभारने में खुशी अनुभव करते थे। वे पात्र देख युगानुरूप मार्ग दर्शन देकर अपनी भूमिका निभाते थे। सचमुच! वे निष्काम कर्मयोगी थे।

अनुशासन भरा नेतृत्व

आध्यात्मिक पुरुष आचार्य तुलसी ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रतीक ही नहीं, विलक्षण प्रतिभा के धनी भी थे। करीब साठ सालों तक उन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ का दृढ़ता, मानवीय संवेदनशीलता एवं दिव्य दृष्टि से नेतृत्व किया। वे केवल सिद्धांतों की गहराई में ही नहीं जाते थे बल्कि सिद्धांतों के मूल उद्देश्य और उन उद्देश्यों के प्रयोग तथा साधना में विश्वास रखते थे–केवल कोरे उपदेश में ही नहीं, आचरण की दृढ़ता को व्यवहार में लाने में विश्वास करते थे। धर्म को स्वार्थ एवं संकीर्णता की पगडंडियों से निकाल पुनः शुद्ध अध्यात्म में प्रतिष्ठित करना, प्रयोग में लाना, उनके संपूर्ण जीवन का लक्ष्य रहा। जन-जन की जीवन शैली में बदलाव लाने और मानव को मानव बनाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे।

साध्वी शुभप्रभा, जिन्होंने उनके नेतृत्व शैली पर गहन अनुसंधान किया है, के अनुसार–'वे जड़ कर्म नहीं, चेतन पुरुषार्थ थे। उनका मन, वचन, कर्म, संवाद, वार्ता, प्रवचन, जन संपर्क, पठन-पाठन और दैनिक चर्या एवं जीवनशैली सब आत्महित और लोकहित के धागे से अनुस्यूत थी।' आत्मानुशासन अध्यात्म का एक आगम विशिष्ठ अंग है, उसी के अनुरूप उनका जीवन स्वयं अनुशासित था और पूरे संघ को मर्यादा में रखना उनके जीवन का ध्येय था, जिसमें वे बहुत सफल हुए।

उनकी इस विशेषता के लिए उनकी कुंजी थी–उनकी आंतरिक अवधारणा 'निज पर शासन :

फिर अनुशासन'–इस सिद्धांत की निष्ठा के कारण ही सिर्फ 22 साल की उम्र में बने आचार्य ने सैकड़ों साधु-साध्वियों और लाखों श्रावक-श्राविकाओं के घर्म-संघ का सफल नेतृत्व किया। जब वे आचार्य बने उस समय धर्म संघ में उनसे उम्र में बड़े व ज्ञान से बड़े संत मौजूद थे, जिनका नेतृत्व उन्हें करना था। सिर्फ नेतृत्व ही नहीं, उन्हें मनोयोग से साथ लेकर आगे बढ़ना था, जो कोई आसान कार्य नहीं था। उन्होंने स्वयं महसूस किया कि इतने बड़े धर्म संघ का नेतृत्व एक चक्रवर्ती राजा के शासन से ज्यादा मुश्किल कार्य था, भयंकर चुनौतियों से भरा। लेकिन नेतृत्व की जिम्मेवारी जब सम्यक् दृष्टि वाले सबल व्यक्ति के कंधों पर पड़ती है तब आंतरिक शक्तियां सक्रिय रूप से विकास करती हैं जो ऐसे पुरुष में छिपी होती हैं। हर कड़े अनुभव और हर चुनौति के साथ चिंतन, दृष्टिकोण, कार्यशैली, कायाकल्पित होने लगती है तथा नेतृत्व में निखार आने लगता है। उनके जीवन दर्शन से लगता है कि नेतृत्व के गुण उनमें जन्मजात थे। उनके गुरु आचार्यश्री कालूगणी को इसका भान अवश्य था, तभी एक 22 साल के अपने शिष्य को उन्होंने आचार्य पद के लिए योग्य समझा। आचार्य कालू की नजरें पारखी थीं, उनमें अतींद्रिय ज्ञान का विकास था, इस कारण उन्होंने बाल-अवस्था से ही तुलसी में नेतृत्व के गुणों की झलक देख ली थी। फिर आचार्य कालू के अनंत सहयोगी मंत्रीमुनि श्री मगनलाल स्वामी की मंत्रणा भी यही थी। पूत के पग पालने में दिखते हैं।

कुछ बालक, अभिमन्यु की तरह इतने प्रतिभा संपन्न व धारणा-शक्ति संपन्न होते हैं कि वे बाल्य-अवस्था में जो सुनते हैं उसे वे अपने अंतर मन में आत्मसात कर लेते हैं। तुलसी ने स्वयं कहा कि पूज्य कालूगणी स्वामी के आचार्य काल में जो घटनाएं घटित हुई, जिस कुशलता से उन्होंने उनको सुलझाया, वे उनके मानस में बैठ गईं और उनके अनुशासन के लिए मार्गदर्शक बन गईं। उन्होंने अपने गुरु के जीवन दर्शन को समझा और अपने आपको कर्मठ बनाया।

बहुत कुछ ज्ञान लिए बालमुनि तुलसी आचार्य बनने के बाद अपने आप को हर दृष्टि से विकसित करते चले गए। आचार्य बनने से पहले ही उन्होंने अपनी सोच बना ली थी कि शिक्षा देने वाले को पहले स्वयं अपना समग्र विकास करना चाहिए। अध्यात्म की गहराई में जाकर धर्म के दर्शन को स्वयं समझना चाहिए और फिर समाज के समक्ष रखना चाहिए, और यही उन्होंने पूर्ण निष्ठा से, पूरी शक्ति से किया भी।

पूरे जीवन दर्शन एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन कर अपने साधु-साध्वियों का विकास किया और स्वयं को उनमें प्रतिष्ठापित किया। वे जाग्रत अवस्था में ही आध्यात्मिक, शैक्षणिक और संघ विकास के स्वप्न देखते थे। अपने स्वप्नों को सत्य की धरातल पर लाने के लिए, उनकी क्रियान्विति के लिए उन्होंने अपने शिष्यों की और फिर श्रावकों की टीम बनाई। वेग से चलने का उनका मूल स्वभाव था। अपने संतों से खुले दिमाग से विचार विमर्श कर अपने कार्य को योजनाबद्ध कर पूरी तैयारी के साथ आगे बढ़ते गए। उनकी आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों की विकास यात्रा में नए-नए विचार आते रहे। जहां उपयोगी-आवश्यक लगा उसे स्वीकारने में उन्होंने तनिक भी विलंब नहीं किया और जो अर्थवान लगा उसे त्यागने में भी संकोच नहीं किया। वे निर्णय लेने के बाद दृढ़ रहते थे और पूरी शक्ति से क्रियान्विति में लग जाते थे।

वे लोकतांत्रिक प्रणाली से निर्णय करते थे। अपने से बड़े मंत्रीमुनि, जो स्वयं गुणों के भंडार थे, उनसे भी अपने जीवन काल तक सलाह करते रहे। अपने संतों से, अपने शिष्यों से और यहां तक कि अपने प्रबुद्ध एवं शासन समर्पित श्रावकों से भी निरंतर सलाह करते रहते थे, लेकिन निर्णय होने के बाद उसके क्रियान्विति की सारी बागडोर अपने हाथ में रखते थे। फिर निर्णय उनका होता था। प्रतिकूल वातावरण को पार कर विकास के नए क्षितिज खोजते रहते थे, या यों कहें कि प्रतिकूल घटनाएं उन्हें विकास के नए लक्ष्य की ओर प्रेरित करती रहती थीं।

जिस युग में वे जैन धर्म व तेरापंथ के विकास के लिए जूझ रहे थे, उस समय का वातावरण काफी प्रतिकूल था। एक धर्म दूसरे धर्म से बहुत टकरा रहे थे। भयंकर

विरोध करते थे, झूठे लांछन भी लगाते थे, लेकिन आचार्य तुलसी किसी की खिलाफत किए बिना प्रतिकूलताओं को पार कर अपने उद्देश्य व अपने विकास के नए क्षितिज की तरफ बढ़ते गए। वे कभी, संघर्षों की आग के समक्ष सम्यक दृष्टि से दृढ़ता से खड़े रहे तो कभी अनेकांत दृष्टि से मात्र दृष्टा बने रहे और प्रतिकूल हवाओं को पार कर विकास के नए क्षितिज पर आरूढ़ होते रहे।

संघर्षों का महान पुरुषों के जीवन से सदैव नाता रहा है। संघर्षों के तप से निकलने वाले ही चमकते हैं, नई दिशा उन्मुक्त कर पाते हैं एवं विश्व में अपना प्रभाव छोड़ पाते हैं। आचार्य तुलसी इसके अपवाद नहीं रहे।

उनका स्वभाव प्रगतिशील था, लेकिन आधारभूत संघ परंपराओं के प्रति उनकी पूर्ण व गहरी निष्ठा थी व उसके प्रति कटिबद्ध भी थे। लेकिन अनेकांत की दृष्टि से परंपराओं और प्रगतिशील का समन्वय उनके निर्णयों में हमेशा झलकता।

ज्यादातर भारतीय समाज परंपरावादी या यों कहें रूढ़िवादी रहा है। श्रावक समाज ही नहीं, साधु-साध्वियां भी इसके अपवाद नहीं हैं। युग के अनुरूप सही एवं उपयोगी परिवर्तन भी आमतौर पर बर्दास्त नहीं होते। ऐसे में एक आध्यात्मिक क्रांतिकारी विकास पुरुष द्वारा मूल सिद्धांतों की अवहेलना किए बिना भी, थोड़ा-सा बदलाव लाना, मान्यताओं को युगभाषा में रखना व उनकी क्रियान्विति को व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी बनाना, सहन नहीं होता। ऐसे में समाज के संस्कारों और विचारों में व्याप्त गलत रूढ़ियों जैसे–शादी-विवाह में प्रदर्शन के लिए बेहद खर्च, मरणोपरांत भोज, तड़क-भड़क वाला रहन-सहन, यहां तक कि तपस्या के उपरांत आडंबरमय समारोह में संयम (बदलाव) कैसे बर्दाश्त हो सकता था, लेकिन उन्होंने नियम बनाकर लगातार समझाने का प्रयत्न किया। भारतीय पुरुष प्रधान समाज का असर साधु-साध्वियों में भी व्याप्त था। साध्वियों की स्थिति संतों के उपेक्षित दोयम दर्जे की थी। उसे उन्होंने धीरे-धीरे बदला और दोनों को बराबर का स्थान दिया, पूर्ण विकास का मौका दिया। नतीजतन कई साध्वियां हर क्षेत्र में संतों से आगे भी निकल गईं।

आचार्य तुलसी दृढ़ तो थे, लेकिन हठी नहीं थे। आवश्यक होने पर अपने कार्यों की समीक्षा व परिष्कार से भी वे कभी विमुख नहीं हुए। इसका साक्षात उदाहरण है–'अग्निपरीक्षा' पुस्तक।

जैन आगमों में साधु-साध्वियों को त्रुटियों पर दंड देने का प्रावधान है। उन्हें आजीवन आचारांग में वर्णित नियम पालने होते हैं। इसके अतिरिक्त आचार्यों द्वारा निर्मित मर्यादाओं में भी रहना होता है। नियम काफी कठिन हैं, लेकिन साधुओं को उन्हें पालना ही होता है। वे पूजनीय हैं। गृहस्थ जीवन से, स्वतंत्र जीवन से निकल साधु कड़े व कठिन अनुशासन में प्रवेश करता है। साधु बनने के बाद भी मूल में तो वे हैं मनुष्य ही। शायद इसी कारण कुछ कमजोरियां आ सकती हैं और वह साधना करते-करते जाने-अनजाने में कुछ गलतियां कर सकता है, लेकिन आचार में ढील वर्जित है। आगमों में प्रायश्चित्त का प्रावधान है, समय-समय पर आचार्य जो प्रायश्चित्त देते रहे हैं यह उनकी परंपरा है। कुछ गलतियों का प्रायश्चित्त साधु स्वयं रोज करता है, लेकिन बड़ी गलतियों या संघ की अनुशासनहीनता का प्रायश्चित्त सिर्फ आचार्य ही देते हैं। यह कार्य आचार्य के लिए भी आसान नहीं है, विशेष तौर पर अपने निकटस्थ, दीक्षा में बड़े आदि साधुओं को भी प्रायश्चित्त देना। यह कार्य प्रिय भी नहीं है और आचार्य के अनुशासन शैली व नेतृत्व की परीक्षा भी होती है।

उन्हें संघ के लगभग 800 साधु-साध्विगण, समण-समणिवृंद, जो उनसे दूर अलग-अलग स्थानों में विचरण करते होते थे, को भी संभालते हुए, अनुशासन की डोर में बांधे रख, उनके व्यक्तित्व निर्माण, शिक्षण-परीक्षण का ध्यान भी रखना पड़ता था। ऐसे में किसी भी साधु की गलती होने पर आचार्य के पास शिकायतें पहुंचती थीं। शिकायत आने पर उन्हें अपने विभिन्न विश्वसनीय माध्यमों से पूरी तहकीकात करनी पड़ती। शिकायत सही होने के अनुमान से ही वे एक्शन नहीं

लेते, उस समय तक रुकते जब तक संबंधित साधु से व्यक्तिगत आमने-सामने संपर्क व बात नहीं होती। यह कार्य कठिन होता है, काफी साधुओं का अपना मूल स्वभाव साधु बनने के बाद भी ज्यादा नहीं बदलता, कुछ साधु अपनी गलती स्वीकार कर लेते हैं, कुछ नहीं व कुछ पूर्ण रूप से नहीं। फिर गलती कोई आचार्य के सामने तो घटित होती नहीं। आमने-सामने संपर्क होने पर वे एकांत में उनके पक्ष की जानकारी लेते। जब उन्हें लगता कि गलती हुई है तो उसको उसकी गलती का एहसास करवाते। उस गलती के प्रति उनकी मानसिकता की थाह लेते। गलती स्वीकार करने पर उसे नोट करवाते। फिर निरपेक्ष होकर संघीय दृष्टि, परंपराओं के अनुसार पूर्ण समीक्षात्मक विचार कर प्रायश्चित्त देते। कभी-कभी बड़ी गलती पर तो दंड सार्वजनिक रूप से भी देना पड़ता, ताकि पूरे संघ पर इसका असर पड़े। ऐसा ही एक प्रसंग 1960 का है, जब आचार्यश्री पूर्वांचल की यात्रा पर थे। इधर राजस्थान में विचरते हुए कुछ संतों की शिकायतें आचार्यश्री के पास पहुंचीं। उन्होंने अपने विश्वास पात्रों से पूरी तहकीकात की और उन्हें विभिन्न सूत्रों से लगा कि गलतियां हुई हैं। लेकिन उन्होंने तत्काल कोई एक्शन नहीं लिया, क्योंकि व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के बिना वे निर्णय नहीं लेते थे। अपनी पूर्वांचल की यात्रा से वापस लौटने पर उन्होंने संतों से व्यक्तिगत स्पष्टीकरण मांगा। साधुओं ने गलतियां स्वीकार कर लीं, लेकिन चूंकि गलतियां बहुत भारी थीं। इसलिए अगले दिन साधु-साध्वियों व श्रावक-श्राविकाओं की भरी परीषद में संदर्भित साधुओं को सबके सामने खड़ा करके कड़े शब्दों में कहा कि तुम लोगों ने भयंकर भूल की है, इसलिए मुझे कठोर कदम उठाना पड़ेगा। इसके पहले कि वे कुछ आगे फरमाते संदर्भित साधुओं ने विनम्रता से सार्वजनिक रूप में अपनी भूलों को स्वीकार कर लिया और पश्चात्ताप किया, फिर मन से निवेदन किया कि भविष्य में ऐसी गलतियां फिर कभी नहीं होंगी। विनम्रता से सार्वजनिक गलती स्वीकार करना भी बहुत बड़ी बात है, बहुत बड़ा पश्चात्ताप है। आचार्यश्री ने संघ को ऐसा बना दिया था जिससे ऐसा हो पाया। उनके व्यक्तित्व व कार्य शैली का यह एक बहुत बड़ा उदाहरण है। सार्वजनिक रूप से गलती स्वीकारने व उनके मन में पश्चात्ताप के भाव देख उसके अनुरूप उचित प्रायश्चित्त तो दिया, साथ ही उन्होंने उसी समय उन साधु-साध्वियों को भी खड़ा किया जिन्होंने संघ के लिए आचार्य के दूर विचरण के दरमियान विशेष कार्य किए। आचार्यश्री ने उन्मुक्त भाव से उनके विशेष कार्यों का उल्लेख किया और उनको उचित प्रोत्साहन दिया।

अनुशासन तभी सफल व प्रभावी हो सकता है जब गलतियों पर उचित दंड दिया जाए और प्रशंसनीय कार्यों के लिए खुलेमन से प्रोत्साहन। इस सिद्धांत को उन्होंने आत्मसात कर लिया था और यह उनके साठ साल के आचार्य काल में नेतृत्व की शैली का अंग बन गया था। प्रायश्चित्त भी वे निरपेक्ष भाव से देते थे। छोटी-सी गलती होने पर भी अपने निकट शिष्य मुनि नथमलजी स्वामी (जिन्हें उन्होंने अपने ही जीवन काल में आचार्य पद सौंप दिया) व विशिष्ट संत मंत्री–मुनि मगनलाल स्वामी को भी अपनी अप्रसन्नता जताई। बहुत बड़ी गलतियों पर उन्होंने अपने आचार्य काल में न जाने कितने साधु-साध्वियों का संघ से नाता तोड़ लिया और छोटी गलतियों पर उचित प्रायश्चित्त देकर सावधान कर, सुधरने का मौका भी दिया, ताकि वे अच्छे साधु-जीवन का निर्वाह कर अपना और समाज का कल्याण कर सकें।

उनके अनुशासन की सफलता के चर्चे दूर-दूर तक होते थे। उनके संघ में ही नहीं संघ से बाहर भी लोगों ने उनके कर्तृत्व का लोहा लिया। अकसर लोग बात करते थे कि अगर वे राजनेता होते तो उनका नेतृत्व कैसा होता–इस पर अलग-अलग विचार विद्वानों के आते रहे। एक विचार ग्रीक के मशहूर दार्शनिक एरिस्टोटल का भी है–देश के सर्वोच्च पद पर एक अध्यात्म से ओत-प्रोत दार्शनिक राजनेता होना चाहिए ताकि वह जीवन और जगत से संबद्ध समस्याओं का सफलता से जनहित में समाधान कर सके। आचार्यश्री ने साधु जीवन

में ही एक ऐसे अनुशासन की रूपरेखा प्रस्तुत की जो समाज और राष्ट्र के लिए अनुकरणीय है।

कर्तृत्व

82 वर्ष की आयु में महाप्रयाण करने वाला यह अध्यात्म पुरुष अपने पीछे छोड़ गया महाप्रज्ञ जैसे विलक्षण महान आचार्य को, कंचन जैसी उज्ज्वल विदुषी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा को, महाश्रमण की उपाधि से सुशोभित मुनि मुदित कुमार को जो आज के आचार्य महाश्रमण हैं, विद्वान साधु-साध्वियों की धवल सेना, एक सशक्त जैन समाज, सशक्त तेरापंथ, अनेक उपक्रम और अपने पूरे जीवन की विचारधारा और आध्यात्मिक उपलब्धियां। दूरदर्शिता से विकास कार्य उनके जीवन का लक्ष्य था। आज संपूर्ण जैन इतिहास में दूसरा कोई भी ऐसा आचार्य या साधु नहीं मिलता जिसने इतने सफल कार्य किए हों।

आगम संपादन

आचार्य तुलसी, उन्होंने दर्शन व अध्यात्म के क्षेत्र में कई विशेष कार्य किए, लेकिन मेरी दृष्टि में विश्व को उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन है–आगमों का संपादन। अपने शिष्य महाप्रज्ञ व अन्य विद्वान संतों के सहयोग से आगमों के संपादन का जो विशाल व कठिन कार्य किया, वह अद्वितीय है। 1987 में दिल्ली विश्वविद्यालय प्रांगण में उस समय तक प्रकाशित कुछ आगमों के विमोचन के समय इस कार्य को देख विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन चेयरमैन प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. डी.एस. कोठारी व वाइस चेयरमैन डॉ. सच्चिदानन्द मूर्ति आश्चर्य चकित रह गए। उनके लिए यह विश्वास करना भी कठिन था कि आगम संपादन जैसा विशाल, दुरूह एवं उच्चस्तरीय कार्य आचार्य तुलसी के नेतृत्व में उनके शिष्यों के द्वारा इतनी कम अवधि में किया गया। इस कार्य को शुरू करने से पहले इस क्षेत्र के देश-विदेश के प्रमुख विद्वानों की राय थी कि यह कार्य इतना बड़ा है कि 100 साल में भी पूरा होना मुश्किल है। डॉ. सच्चिदानंद मूर्ति तो इस कार्य की गुणवत्ता देख इतने भाव विभोर हो गए कि उन्होंने आचार्यश्री से कहा कि यह कार्य एक विश्वविद्यालय की नींव डालने लायक है। उनके इन शब्दों को आचार्य तुलसी ने अपने मन में साध लिया और विश्वविद्यालय बनाने का कार्य शुरू हो गया। इस तरह आज के जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय के बनने में आगमों का संपादन नींव का पत्थर बन गया। कार्य निश्चित रूप से कठिन व विशाल था। अनेकों अनेक कठिनाइयां इस कार्य को करने में आई थीं, उदाहरणार्थ–

1. जैन आगम (सूत्र) महावीर के निर्वाण के कुछ वर्षों बाद लिखे गए। करीब 2500 वर्ष पूर्व व कालांतर में उनकी प्रतियां होती रहीं, व्याख्याएं होती रहीं, वह भी जगह-जगह। इस बिखरी सामग्री में मूल सूत्रों तक पहुंचना, जो अर्धमागधी, प्राकृत, देवाधिगणी क्षमा श्रमण, संस्कृत आदि भाषाओं व विभिन्न लिपियों में थी, जिस हाल में थी, मुश्किल कार्य था, फिर उस समय की भाषा, उस समय के उन शब्दों का तात्पर्य व व्याख्या को आज के परिप्रेक्ष्य में समझना व समझाना।

2. 2500 सालों के अनेक आचार्यों द्वारा रचित ग्रंथों, टीकाओं को इकट्ठा करना, समझना, विशेषरूप से अलग-अलग जैन परंपरा के जैनाचार्यों द्वारा समय-समय पर अपनी-अपनी समझ से सूत्रों का अर्थ निकालना, व्याख्या करना, वो भी अलग-अलग भाषा और लिपि में और फिर अर्थों में सामंजस्य बैठाना।

3. भाषा में शब्दों के अनेक अर्थ व समय के साथ निरंतर अर्थ यात्रा, नए शब्दों का जुड़ना, एक ही सूत्र में अलग-अलग अर्थ निकालना आदि कठिनाइयों को और जटिल करता रहा।

4. भाषा, अर्थ व समय की विभिन्नताओं में मूल सूत्रों के अर्थ को समझना, बिखरे प्राच्य ज्ञान को एक सूत्र में, एक प्रवाह में, एक जगह बिना अवरोध ऐसा पिरोना कि भ्रांतियां दूर हो जाएं और मौलिकता व गुणवत्ता खोए बिना मूल अर्थ व्यक्त रहे, यह इस कार्य की मूल पहली आवश्यकता थी, जिसे कुशलता से निभाया गया। मूल को सामने रखते हुए उसमें पुनः

संधान करना, प्रासंगिकता के आधार पर अर्थ का संपादन कर अपनी मौलिक दृष्टि से राय देना, अपने ढंग से अभिव्यक्त करना एक अकल्पनीय जैसा कार्य किया गया, जिसे विभिन्न जैन परंपरा के विद्वानों ने स्वीकार ही नहीं किया, सराहा भी और आज का पाठक समझ भी सका।

आगम व जैन साहित्य के प्रकाशन ने जैन जगत में एक नवीन क्रांति पैदा कर दी, आज सारा जैन व अजैन समाज उनको इस महान कार्य का श्रेय देते हैं, लेकिन इस कार्य को करने में उनका कितना श्रम लगा और कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, उसका आकलन करना असंभव है। उनका यह कार्य युगों-युगों तक याद किया जाने वाला है। इतना विशाल कार्य महावीर के बाद प्रथम बार ही हो पाया है।

नैतिक क्रांति : अणुव्रत

भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है। विश्व के प्रमुख छः धर्मों में से तीन का उदय यहां हुआ है। अच्छे-अच्छे धर्माचार्य अपने-अपने धार्मिक सिद्धांतों की महत्ता बता, उसकी क्रियान्विति (उपासना) द्वारा आगे के जन्म, स्वर्ग या मोक्ष या जन्नत जैसी उपलब्धियां मिलने का उपदेश देते हैं, लेकिन आज मनुष्य के दैनिक जीवन में नैतिक आचरण आए और उससे इस लोक व परलोक, दोनों में उपकार हो सकता, इसकी शिक्षा देते कम नजर आते हैं। उपासना करने के तरीके बताए जाते हैं। ऐसे जैन धर्म में अपने आराध्य के नाम की माला फेरना, सामायिक करना, उपवास रखना, खाद्य-भौतिक पदार्थों एवं धन के संचय का संयम करना, आदि आदि। लेकिन दूसरों का शोषण किए बिना, क्रूर व्यवहार किए बिना, ईमानदारी से आजीविका का अर्जन करना जैसे नैतिक मूल्यों को पालने पर जोर नहीं के बराबर देते हैं। नतीजन आम भारतीय अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार थोड़ा या ज्यादा उपासना के तरीकों को तो जानता है, कुछ प्रयोग भी कर लेता है, लेकिन नैतिक मूल्यों को पालने में उदासीन रहता है। वह नहीं जानता या कुछ जानते हुए भी ध्यान नहीं देता कि इन मूल्यों का स्वयं समाज व देश के लिए क्या महत्त्व है। नतीजन समाज में अनैतिक व्यवहार, भ्रष्टाचार, अप्रामाणिक व्यापार, हिंसा आदि व्याप्त हैं।

आचार्य तुलसी ने गहराई से ध्यान दिया कि इस धर्मप्रधान देश में धर्म की उपासना करने वाले लोग अनैतिक क्यों हैं? उनका चिंतन था कि धर्म और उपासना मानव के लिए आत्म-सिद्धि, स्वर्ग या मोक्ष के लिए हो सकते हैं, लेकिन धर्म आधारित नैतिक मूल्यों को धारने से व्यक्ति का, स्वयं का, समाज का और राष्ट्र का कल्याण होगा, उत्थान होगा। उनकी दृष्टि थी की उपासना व्यक्तिगत है, उसका मूल्य भी व्यक्तिगत है, व्यक्ति की उपासना का समाज से कोई सरोकार नहीं, कोई टकराव नहीं, पर उसकी नैतिकता या अनैतिकता का समाज, राष्ट्र व विश्व से सीधा संबंध है। अनैतिकता सामाजिक बुराई है और धर्माचार के प्रतिकूल है, पर नैतिकता व्यक्तिगत ही नहीं, सामाजिक अच्छाई है और धर्माचार के भी अनुकूल है। नैतिकता धर्माचार है, किंतु केवल धर्माचार नैतिकता नहीं है।

व्यक्ति अगर अपने कार्य क्षेत्र में अनैतिक है, तो वह धर्म क्षेत्र में शुद्ध धार्मिक कैसे हो सकता है? उपासना भी तभी सफल होती है जब व्यक्ति के मन और आचरण में नैतिकता हो और उन नैतिक मूल्यों के साथ वह जी रहा हो। उपासना करते हुए भी मनुष्य नैतिकता से अपनी आजीविका कमा सकता है और अच्छे सामाजिक संबंध रख सकता है। धर्म का महत्त्वपूर्ण, अनिवार्य व प्रथम चरण ही नैतिकता है, लेकिन धार्मिक जगत में चिरकाल से यह अवधारणा प्रचलित हो गई है, व्यवहार में आ गई है कि परलोक सुधारना है तो धार्मिक उपासना करो। केवल परलोक सुधार, धर्म की दृष्टि से आकर्षक हो सकता है, लेकिन परलोक की चिंता इतनी हो गई कि वर्तमान आंखों से ओझल हो गया, नगण्य हो गया, और यही कारण बना आज की स्थिति का, इस धार्मिक जगत में यह मान्यता घर कर गई कि नैतिकता से वर्तमान तो सुधर सकता है, लेकिन परलोक नहीं। समस्या वहां पैदा होती है जहां सत्य के एक अंश को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है।

आचार्यश्री का यह मानना था कि मूल्यों का संबंध वर्तमान व भविष्य–दोनों कालों से हैं। ऐसा लगता है कि

धर्म का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सबसे पहले मानव को नैतिक बनाना है, वहीं धार्मिक जगत से छूट गया है, उनके इस विचार का धर्म क्षेत्र में विरोध भी हुआ। आचार्य-प्रवर ने विरोध के जवाब में कहा कि सामाजिक मानव के लिए धर्म का उपदेश है कि मनुष्य हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह, राग-द्वेष, आदि से बचे, ब्रह्मचर्य-संयम का पालन करे तो क्या ये नैतिक मूल्य नहीं हैं। नैतिक मूल्यों व धर्मोपासना के नियमों में कोई विरोध नहीं। आवश्यकता यह थी कि इन मूल्यों के समोपयोगी पक्ष को समयानुसार ऐसे नियमों में ढालना, जिससे ये नियम हर धर्म, हर जाति, हर वर्ग के लोग अपने मन से उनकी उपयोगिता समझ सके, फिर अपनाकर जीवन में पाल भी सके। इसी उद्देश्य से उन्होंने विद्यार्थी, अध्यापक, कर्मचारी, व्यापारी आदि हर वर्ग के लिए छोटे-छोटे अलग-अलग नैतिक मूल्यों के नियम बनाए। इन नैतिक नियमों को उन्होंने नाम दिया–अणुव्रत।

उन्हें अपने इन विचारों को लेकर आगे बढ़ना था, ऐसे में सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और देश में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। लाखों लोग मारे गए, हजारों घर जला दिए गए, काम विकृति, द्वेष और दिशाहीन कामुकता के कारण अनगिनत महिलाओं एवं बच्चियों का शीलहरण हुआ, लोग तबाह हो गए। बेघर लोगों की जीविका के साधन नष्ट हो गए। करोड़ों लोगों को भारत और पाकिस्तान में शरणार्थी बनना पड़ा। स्थिति बेहद भयावह थी, साथ ही दिशा नहीं मिलने के कारण अनैतिकता, कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, आचरण में गिरावट आदि समस्याएं सिर उठाए खड़ी थीं। इन सब विषम परिस्थितियों में देश के नेताओं को और प्रशासन को सामान्य स्थिति बना कर हर क्षेत्र में विकास करना था, जिसके लिए नैतिकता, ईमानदारी, संयम और पुरुषार्थ की आवश्यकता थी। ऐसे में आचार्यश्री ने मानव-मानव में नैतिक मूल्यों की अपनी सोच को आगे बढ़ाया। चिंतन कर साहसपूर्वक 2 मार्च 1949 को उन्होंने अणुव्रत की आचार-संहिता देश के सामने रखी। अणुव्रत यानी छोटे-छोटे अणु जैसे व्रत, जिन्हें व्यक्ति समझे, फिर मन से स्वीकार करे और नैतिक मूल्यों की ओर अग्रसर हो। उनका विश्वास था कि इनको अपनाने से व्यक्ति का जीवन शांतिमय होगा और वो स्वयं समाज व देश में प्रामाणिकता ला पाएगा, व्यवस्था सुधरेगी और देश का सही विकास होगा। ये आचार-संहिता जैन सिद्धांतों के अनुरूप तो थी लेकिन सांप्रदायिक नहीं। उन्होंने इसकी चर्चा मस्जिदों, मंदिरों, मठों, गुरुद्वारों, बौद्ध मठों, चर्चों आदि सभी धार्मिक स्थलों, शिक्षण संस्थाओं, सामाजिक संस्थानों आदि जगहों पर कीं, यहां तक कि उन्होंने इसकी गूंज संसद तक पहुंचाई।

उनका तो यहां तक विश्वास था कि जैन धर्म सांप्रदायिक नहीं है, फिर जहां से ऐसे नैतिक मूल्य निकले वे सांप्रदायिक कैसे होंगे? इन नियमों को धर्मगुरुओं ने ही नहीं, राजनीतिज्ञों, विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि ने समझा, परखा और अंततः माना। उनका चिंतन था कि अणुव्रत की आचार-संहिता धर्म-संप्रदायों को लड़ाने के बजाय नजदीक ला सकेगी और कुछ ऐसा हुआ भी।

भरपूर उत्साह और परिश्रम के साथ इस नैतिक क्रांति को वह हरिजन की झोपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक ले गए। इसे एक आंदोलन का रूप दिया। इसे व्यापारिक समूहों, स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों, सरकारी व निजी कार्य क्षेत्रों, पुलिस, सेना, जेलों, अस्पतालों तक पहुंचाने का भगीरथ प्रयास किया। इसकी गूंज सुदूर तक फैली। देश-विदेश की मीडिया में भी उनके विचार प्रसारित किए गए। उदाहरणतः अमेरिका के प्रसिद्ध साप्ताहिक टाइम (15 मई 1950) ने भी इस पर अपने सकारात्मक विचार छापे। धीरे-धीरे सहमति बनी, हर वर्ग, जाति और धर्म के लोगों तक यह पहुंचा और लाखों ने इसे स्वीकार भी किया। उन्होंने उत्तर में पंजाब से दक्षिण में केप कोमोरिन तक और पश्चिम में कच्छ से पूर्व में कलकत्ता तक करीब एक लाख किमी. की पैदल यात्राएं कीं। विभिन्न क्षेत्रों के, विभिन्न भाषा के पढ़े-अनपढ़े विद्वानों से, अलग-अलग कल्चर (संस्कृति) की विचारधाराओं के लोगों से चिंतन-मंथन किया, उन्हें अणुव्रत रूप नवनीत से अवगत कराया। अणुव्रत का कार्य एक आंदोलन के रूप में बहुत कुछ हुआ और अब भी हो रहा है। 2013-14 आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी वर्ष के

रूप में मनाया जा रहा है। ऐसे में आज एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जिस उद्देश्य से यह आंदोलन प्रारंभ हुआ, वह उसमें कितना सफल हुआ?

यह सच है कि कइयों का इससे जीवन बदला लेकिन काफी प्रयास करने के बाद भी इसकी गति तेज नहीं हुई। आचार्यश्री ने स्वयं अनुभव किया कि जितनी आशा थी, उतना नैतिक आचरण में बदलाव नजर नहीं आ रहा है। चिंतन किया गया और सोचा, हम प्रौढ़ पीढ़ी में इसका प्रयोग कर रहे हैं, उनमें बदलाव समझाने और प्रेरित करने से ज्यादा नहीं आते, क्योंकि बचपन से इन संस्कारों का निर्माण नहीं हुआ, लेकिन बच्चों में जहां संस्कार ढल सकते हैं, मूल्य समझाए जा सकते हैं, वहां न तो इसका माहौल है, न ही कोशिश। देश में शायद ही ऐसा कोई स्कूल या कालेज हो जहां नैतिक-शिक्षा बतौर विषय गंभीरता पूर्वक पढ़ाई जाती हो। ऐसी पुस्तकों का भी अभाव है जहां से युवा सीख सकता है। इस यथार्थ को समझने के बाद, गहन चिंतन-मनन से एक नए विषय की सामग्री जुटाई गई।

विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का बीजवपन शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य के ज्ञान से हो सकता है, इसी के अनुरूप पाठ्यक्रम की रचना की गई। स्कूली शिक्षा की हर कक्षा के लिए पुस्तक लिखी गई। प्रेक्षा ध्यान के प्रयोग भी साथ में जोड़े गए। इस तरह जीवन विज्ञान के नाम से एक नए विषय का प्रादुर्भाव हुआ और इसे लागू कराने का प्रयास शुरू हुआ। प्रयास का महत्त्वपूर्ण कदम यह भी था कि इस विषय से शिक्षकों को मन से अवगत कराने हेतु अनेक ट्रेनिंग कैंपस लगाए गए, जहां उन्हें स्वयं को प्रयोगात्मक प्रशिक्षण कराए गए। उसमें सफलता मिलने के बाद विद्यार्थियों में इसके तुलनात्मक प्रयोग किए गए। उसमें भी सफलता मिलने पर इस पाठ्यक्रम को राज्य सरकारों की मदद से स्कूलों व बाद में कुलपतियों की सहायता से विश्वविद्यालय स्तर पर लागू कराए गए। विषय का निरंतर विकास करने के लिए इस विषय को जैनविश्वभारती विश्वविद्यालय में एम.ए. और पीएच.डी. के स्तर पर चलाया गया। प्रयास अनवरत चलते रहे।

आचार्यश्री एक ऐसे आध्यात्मिक व्यक्ति थे जो विज्ञान के संबंध में अपने विचार खोले और सकारात्मक रखते थे। वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आध्यात्मिक आचरण के समन्वय में विश्वास रखते थे। उनका चिंतन था कि विज्ञान का संबंध किसी भौतिक विज्ञानी से नहीं, न ही आध्यात्मिकता का संबंध किसी सांप्रदायिक व्यक्ति से है, इसलिए दोनों के समन्वय से जीवन विज्ञान का उद्गम हो और उसका उपयोग विद्यार्थी जीवन में बदलाव ला सके। प्रयास व मेहनत बहुत हुए, सफलता भी मिली, लेकिन विकास और बदलाव की गति धीमी होती है जबकि भौतिकवाद तीव्र गति से फैलता है। इसीलिए आज जो देश के हालात हैं सबके सामने है, यह जानते हुए भी कि नैतिक मूल्य जीवन के लिए आज भी उतने ही आवश्यक हैं जितना इसे शुरू करने के वक्त था। देश में आज भ्रष्टाचार व अनैतिक आचरण के खिलाफ फिर क्रांति की चिनगारी प्रज्वलित होती दिख रही है। आज बात नए-नए कठोर कानून बनाने, पुलिस व न्याय व्यवस्था सुधारने की हो रही है। अपराध को अपराध हो जाने के बाद कानूनी सजा के डर से रोकने की कोशिश हो रही है। डर का असर एक सीमा तक हो सकता है। व्यक्ति अपराध करने की मानसिकता ही नहीं रखे, इसकी चेष्टा कानून नहीं कर सकता, यह कोशिश सिर्फ नैतिक आचरण पालने से ही संभव है। इसलिए अणुव्रत आज भी प्रासंगिक है और उसकी पुरजोर न केवल कोशिश वरन आंदोलन की नैतिक क्रांति होनी चाहिए। अणुव्रत देश को नैतिक आचरण से गिरने से बचा सकता है। खुशी इस बात की है कि उनके जन्मशताब्दी वर्ष में अणुव्रत पर पुरजोर ध्यान दिया जा रहा है और आशा है कि हम नैतिक मानव के विकास की तरफ अग्रसर हो सकेंगे, यही इस महामानव को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

नारीशिक्षा

आचार्यश्री की मानव विकास अवधारणा

बहुमुखी एवं दूरदर्शितापूर्ण थी। वे अपने समय से बहुत आगे थे। जिस समय उनका जन्म हुआ और जिस माहौल में वे बड़े हुए, वह माहौल ऐसा था जिसमें स्त्री जाति की स्थिति बहुत खराब थी। चाहे वह साध्वियां हो या साधारण महिलाएं, चाहे वे शहरी हो या ग्रामीण। छोटी उम्र में जब आचार्य तुलसी अपने गुरु आचार्य कालू के पास संत रूप में थे तब ही उन्होंने अनुभव किया कि जहां संतों की शिक्षा पर तो कुछ ध्यान दिया जा रहा है, साध्वियों की शिक्षा और उनके बौद्धिक विकास पर नहीं के बराबर ध्यान दिया जा रहा है। उनसे साधु-साध्वियों के जो दैनिक कार्य होते हैं वे ही ज्यादा कराए जाते हैं, चूंकि जैन साधु संघ अपना सारा कार्य स्वयं ही करता है तो कार्य भी बहुत होता है और उसका अधिकतर भार साध्वियों पर ही पड़ता था। जैसा कि भारतीय समाज की संरचना रही और आज भी है, उस समय तो बहुत ज्यादा खराब थी। स्त्री शिक्षा का कोई वातावरण नहीं था।

आज से करीब 90 साल पहले छोटी उम्र में तुलसी जब अपनी स्वयं कि शिक्षा व अपने से छोटे संतों की शिक्षा में अत्यंत व्यस्त थे, तब उन्होंने विचार किया कि क्या साध्वियां, सिर्फ जितना उन्हें आता है उसके अनुरूप ही व्याख्यान देने और दूसरा कार्य संपादित करने के लिए ही हैं या उनका भी बौद्धिक आध्यात्मिकपूर्ण विकास हो। उनमें हिम्मत थी और बात को सुंदर और विनय के साथ कहने की कला भी। उन्होंने अपने गुरु के समक्ष, अपने उस गुरु के समक्ष जिनके अनुशासन में यह सब सदा से ही चला आ रहा उपक्रम था, अपने विचार प्रस्तुत किए। गुरु कालूगणी भी विशिष्ट थे। उन्होंने अपने छोटे शिष्य की बात ध्यान से सुनी पर उस समय चुप रहे, लेकिन जब तुलसी को 22 साल की छोटी आयु में उनकी विलक्षणता देखते हुए आचार्य पद सौंपा, उन्हें कह गए कि साध्वी शिक्षा पर तुम ध्यान देना।

आचार्य तुलसी ने पहले तो साध्वियों के कुछ कार्य संतों को सौंपे और फिर साध्वी शिक्षा के लिए ऐसा कार्य किया जो जैन इतिहास में अद्वितीय हो गया। स्वयं समय निकाल साध्वियों व संतों को आध्यात्मिक शिक्षा देना शुरू किया, गोष्ठियां आयोजित कीं, भाषा का ज्ञान बढ़ाया। यह क्रम उनका जीवन भर चलता रहा।

सन् 1950 में उन्होंने पारमार्थिक शिक्षण संस्था के नाम से ऐसे नए प्रयोग का विचार अपने प्रबुद्ध श्रावकों को दिया जो विरल था और उन्होंने श्रावकों के माध्यम से उसे पूरा किया। जैन इतिहास में इस तरह का यह एक पहला चिंतन, पहला कदम था। उद्देश्य था कि वैराग्य की भावना से जो साधु बनने आएं, उन्हें साधु बनने से पहले इस संस्था में रखा जाए, जहां वे उचित समय तक अपने वैराग्य, आध्यात्मिकता और बौद्धिकता का संतुलित तौर पर मानसिक व भावनात्मक विकास कर सके। अगर किसी के वैराग्य विचारों में बदलाव आ जाए तो वो यहां से साधु बनने से पहले ही अपने घर लौट सकें। यह संस्था आज भी बहुत सुचारु रूप से चल रही है और इसका उपयोग स्त्री मुमुक्षुओं हेतु ज्यादा किया गया। अध्यात्म की साधना के साथ-साथ इन मुमुक्षुओं ने बी.ए. और एम.ए. तक की परीक्षा को भी पास किया। इस संस्था से अनेक ज्ञानवान साध्वियां निकलीं, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी जैसी विदुषी साध्वी, अनेक विदुषी समणियां भी इसी संस्था से निकलीं जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में, आध्यात्मिकता के क्षेत्र में और समाज में नैतिक विकास का सराहनीय कार्य दुनिया भर में किया। आचार्य तुलसी के साध्विगण को प्रबुद्ध बनाने के स्वप्न को साकार करने में उनकी बनाई इस संस्था ने मील के पत्थर का कार्य किया।

आचार्य तुलसी ने साध्वी शिक्षा पर ही ध्यान नहीं दिया, उन्होंने बच्चों, स्त्रियों, पुरुषों, युवाओं, युवतियों आदि सभी के आध्यात्मिक व बौद्धिक विकास के लिए भी अथक प्रयास किया और समाज को प्रबुद्ध बनाने का प्रयास किया। जीवन भर उन्होंने अंधविश्वास और गलत परंपरा से चली आ रही कुरीतियों को तोड़ने व नशा छोड़ने का भी अभियान चलाया और उसके लिए

नियम बनाए। नैतिक चेतना के लिए उन्होंने नारी शिक्षा के महत्त्व को समाज को समझाया और कोशिश की कि महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में आगे आएं। उनमें लीडरशिप के गुण का विकास हो। वे प्रयत्न काफी सफल भी हुए।

समण-समणी दीक्षा

जैन साधुओं को पांच महाव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य) का पालना, दैनिक कठिन आचार संहिता में रहना, जीवन भर पैदल विहार करना, कठिन नियमों अनुसार भिक्षा लेना। आदि अनिवार्य हैं। इसमें ढिलाई नहीं की जा सकती। ये कठोर नियम उनकी स्वयं की साधना व उपासना के लिए और समाज में एक आदर्श अनुकरणीय नैतिक चरित्र प्रस्तुत करने के लिए तो उपयोगी हैं, लेकिन ऐसे बंधनों के कारण आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा दूर-दूर तक विदेशों तक पहुंचाने में बाधक भी है। इसे ध्यान में रखकर इस महापुरुष ने काफी चिंतन कर एक नई प्रकार की दीक्षा–'समण-समणी दीक्षा' की शुरुआत सन् 1979 में कर साहसिक, ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण कदम उठाया।

इस वर्ग को दीक्षा देते समय जो नियम साधु-दीक्षा में दिए जाते हैं, उनमें कुछ ऐसी छूटें दीं जिससे यह वर्ग देश-विदेश में दूर-दूर तक जा सके और जैन अध्यात्म आधारित शैक्षणिक संस्थाओं में भी कार्य कर सके। इस वर्ग को अध्यात्म के साथ उच्च शिक्षा भी दी गई। यह प्रबुद्ध वर्ग, विशेषकर समणिवर्ग आज जैनधर्म के राजदूत की तरह अहिंसा, प्रेक्षाध्यान, अध्यात्म का कार्य आस्ट्रेलिया से अमेरिका और भारत के कोने-कोने में कर रहा है।

जैनविश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय)

बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने तो विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय खोला, लेकिन जैन समाज इस कार्य में पिछड़ गया। संत तुलसी ने पहली बार एक जैन विश्वविद्यालय बनाने का महान कार्य किया। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि व आध्यात्मिक दर्शन को जोड़ प्राच्य विद्या व नैतिक मूल्यों का एक ऐसा संस्थान बनाया जिसमें हर धर्म के विद्यार्थी अहिंसा, शांति, धर्म, जीवनविज्ञान, प्राच्य भाषा एवं समाज कार्य जैसे विषय पढ़ सकें, अनुसंधान कर सकें व नैतिक आचरण पा सकें। उनकी चाहत थी कि देशभर के विद्यार्थी यहां आएं और अध्यात्म की शिक्षा पाएं व अनुसंधान करें।

आज इस संस्थान मान्य विश्वविद्यालय से हजारों जैन व अजैन विद्यार्थी, सैकड़ों विभिन्न जैन परंपरा के साधु, साध्वी बी.ए. व एम.ए. कर चुके हैं और काफी बड़ी संख्या में पीएच.डी. की उपाधि ले चुके हैं। उन्होंने समणिवृंद को इस संस्थान में शुरू से ही विद्यार्थी के रूप में जोड़ा और यह वृंद इतना विद्वान बना कि यही सह-प्रोफेसर से प्रोफेसर तक पद पर बिना कोई वेतन लिए कार्य करने लगा। यही नहीं इस वृंद में से एक ने फ्लोरिडा विश्वविद्यालय में शिक्षण का कार्य किया, एक ने लंदन विश्वविद्यालय से एम.ए. किया और अब पीएच.डी. कर रही है। इनमें से ही दो समणिवृंद कुलपति के पद तक पहुंचीं। उनमें से डॉ. मंगलप्रज्ञाजी जो अब साध्वी बन गई हैं, ने विश्वविद्यालय को उच्च स्तर पर पहुंचाने में उल्लेखनीय कार्य किया और आज समणी चारित्रप्रज्ञाजी कुलपति के रूप में इस दिशा में समर्पित हैं। आज भी जैनविश्वभारती संस्थान मान्य विश्वविद्यालय देश में विश्वविद्यालयों के लिए नैतिक शिक्षा की नोडल एजेन्सी है।

आचार्य तुलसी ने अपने जीवन में इतने महत्त्वपूर्ण कार्य किए, जिनका वर्णन शब्दों में करना असंभव है। उनके नए और ऐतिहासिक कार्यों की सूची भी लंबी है। लेकिन इस सूची में जो एक और नया अध्याय उन्होंने जोड़ा वह भी अकेला और अद्वितीय ही है। स्वस्थ जीवन व अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर इस आचार्य ने स्वेच्छा से अपने आचार्य पद का विसर्जन कर अपना आचार्य पद अपने प्रमुख विद्वान शिष्य महाप्रज्ञ को दे दिया। यह त्याग की पराकाष्ठा थी। जैन परंपरा में भी यह पहला आदर्श था। ऐसे महान आचार्य और अपने गुरु की सौवीं वर्षगांठ पर कोटि-कोटि वंदन। इस महापुरुष का नाम आध्यात्मिक एवं सामाजिक संसार में अमर रहे, इन्हीं भावनाओं के साथ...। ❑

देहातीत होकर भी जो ला सकता है परिवर्तन

शुभू पटवा

भारत के आध्यात्मिक जगत में आचार्यश्री तुलसी का नाम बहुप्रचलित और बहुश्रुत है। अनेक मूल्यवान अवदान और अनेक घटनाएं उनके नाम से जुड़ी हैं। वे लोग, जो इतिहास में झांकने की थोड़ी भी कोशिश करते हैं, आचार्यश्री तुलसी का व्यक्तित्व और कृतित्व उनके सम्मुख चित्रलिखित-सा हो जाता है। अतः उन सब बातों को दोहराने की बनिस्बत जिस महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर नजर डाली जा सकती है, वह यह कि श्रमण भगवान महावीर ने अपने काल में जिन मुद्दों की तरफ खास ध्यान दिया था, आचार्यश्री तुलसी भी उसी ओर जीवनपर्यंत सचेष्ट रहे। यहां मेरा मकसद यह कतई नहीं है कि मैं भगवान महावीर से उनकी तुलना करूं। जैसी श्रद्धा और अटूट आस्था श्रमण महावीर के प्रति आचार्यश्री तुलसी के मन में रही है, उसके चलते शायद उन्हें (आचार्यश्री तुलसी को) यह बात संगत भी न लगे कि भगवान महावीर से उनकी तुलना की जाए तथापि भगवान महावीर के कार्यकाल में जिन बातों पर सर्वाधिक गौर किया गया, यदि आचार्यश्री तुलसी ने भी उन पर सबसे अधिक ध्यान दिया, तो यह तो माना ही जा सकता है कि वे भगवान महावीर के न केवल अनुगामी ही थे, प्रखर और प्रशस्त उत्तराधिकारी भी थे।

आचार्यश्री तुलसी के कार्यकाल में जो बातें महत्त्वपूर्ण रहीं, 2609-10 वर्ष पहले हुए भगवान महावीर के काल में भी वे बातें ज्वलंत थीं। हम उनमें से कुछेक बातों पर थोड़ी नजर डालते हैं।

श्रमण भगवान महावीर के बारे में इतिहास कहता है कि उनकी साधना और उनका दर्शन किसी मतवाद का मुहताज कभी नहीं रहा। बारह वर्ष की दुर्धर्ष साधना की लंबी कहानी को न कहते हुए, यह बताना पर्याप्त होगा कि अपने साधना काल में वे सदा सहिष्णु और करुणाशील रहे। संपूर्ण साधना काल में अनेक तरह की बाधाएं, शारीरिक कष्ट और प्रतिकूलताओं को जिस तरह सहन किया गया, उनकी जीवन-धारा का मूल आस्रव उसी में से फूटा। अपने संपूर्ण-साधना काल में सहिष्णुता और करुणाशीलता ही उनका संदेश रहे।

ठीक इसी तरह उनका दर्शन भी खंडन-मंडन पर अवलंबित न रह कर समदृष्टि वाला रहा। उनकी नजर में एकाकी दृष्टिकोण कभी नहीं रहा। उनके दर्शन को नाम दिया गया–'अनेकांतवाद' या 'अनेकांत दर्शन'। आचार्य महाप्रज्ञजी ने 'अनेकांतवाद' को वर्तमान की समस्याओं के समाधान का महत्त्वपूर्ण आधार माना है। इसी प्रकार उनकी साधना से निकली करुणाशीलता और सहिष्णुता को भी वर्तमान के विषमता भरे जीवन का कारगर उपाय माना गया। आचार्यश्री तुलसी की संपूर्ण साधना भी इसी धारा में बही। करुणा, सहिष्णुता, समदृष्टि ही उनके जीवन का प्रमुख अवलंबन रहा। अनुशासन की दृष्टि से उनकी तनी हुई भृकुटि और वाणी का तेज जहां उद्दंडता के लिए रामबाण औषधि सिद्ध होता था, वहीं उनके आभामंडल से टपकती करुणा समूचे श्रम की थकान को हरने वाली सिद्ध

होती थी। उनके ये दोनों ही रूप इस लेखक ने एक से अधिक बार देखे हैं। इसी तरह उनकी सहिष्णुता और समदृष्टि भी निर्विवाद थी। सहिष्णुता के लिए तो उन्होंने एक ताबीज ही गढ़ रखा था। वे कहते थे–'जो करे तुमसे विरोध, तुम उसे समझो विनोद'–यह उनका बीजमंत्र था और यही था–ताबीज। जिसने इस ताबीज को धारण कर लिया, उसके सम्मुख विरोध बेअसर हो गया। ऐसी अनेक घटनाएं हैं कि उग्र विरोध में भी आचार्यश्री तुलसी अडोल रहे। इसलिए कि सहिष्णुता का 'ताबीज' उन्होंने धारण कर रखा था।

उनकी समदृष्टि भी बेमिसाल थी। अनेकांतवाद को दर्शन के रूप में तो उन्होंने हृदयंगम किया ही, व्यवहार के स्तर पर अपनें जीवन में भी उन्होंने उसे उतारा। उनकी समदृष्टि और खंडन-मंडन से मुक्त उनके विचारों को सर्वत्र महत्त्व मिला। उनकी इसी दृष्टि के फलस्वरूप अनेक राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय समस्याएं सहज ही समाधान पा जाती थीं। ये सभी समस्याएं–जब उनके समक्ष आतीं, तो वे खंडन-मंडन से मुक्त होकर अपनी राय देते। उनकी समदृष्टि में, सह-अस्तित्व के उनके निर्मल दृष्टिकोण में विपरीत धाराओं को भी साथ-साथ मिल जाने का अवसर प्राप्त हो जाता था।

श्रमण महावीर का अनुगामी कहलाने के लिए उपरोक्त बातें पर्याप्त हैं, पर किन्हीं अन्य का अवदान इनमें न रहा हो–यह कह देना शायद उचित नहीं होगा, अपितु एक प्रकार से अन्यों का अवमूल्यन भी कहा जा सकता है।

लेकिन, क्या ऐसा भी कुछ है, जो अन्यों से हटकर भी हो? महावीर के काल में स्वयं श्रमण महावीर ने भी उस ओर खास तवज्जुह दी और आचार्यश्री तुलसी के काल में उन्होंने भी उस ओर खास तवज्जुह दी, अपने-अपने काल में दोनों ही ने जिन्हें समान गंभीरता से लिया। कहा जा सकता है कि वे दो धाराएं न होकर एक ही धारा हो। भिन्न कालखंड के चलते प्रवाह का अंतर माना जा सकता है, पर दोनों ही कालखंडों में समय की धारा और उसकी पहचान में एकरूपता और उसी के अनुसार उनके लिए उठने वाले कदम एक से रहे। दो प्रवाहों की यह एकरूपता ही दोनों (आचार्यश्री तुलसी और श्रमण भगवान महावीर) को एक धरातल देते हैं। और, इसीलिए कहा जा सकता है कि वे उनके अनुगामी ही नहीं, सही मानी में वास्तविक उत्तराधिकारी भी थे।

इस प्रसंग पर मैं दो ही बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा। आचार्यश्री तुलसी ने धार्मिक सहिष्णुता के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। वे केवल 'जैन' तक सीमित नहीं रहे। उनकी दृष्टि 'जन' तक फैल गई थी। वे 'जैन' से पहले हर किसी को असली 'जन' कहलाना या देखना चाहते थे। सांप्रदायिक संकीर्णता से तथा दायरों की बाड़ाबंदी से तो वे मुक्त थे ही, जन-जन को भी मुक्त कर उन सब में छिपे असली 'जन' को वे उजागर करना चाहते थे। अहिंसा, नैतिकता और आध्यात्मिकता के बल पर वे समाज परिवर्तन को एक दिशा देना चाहते थे। 'अणुव्रत आंदोलन' के माध्यम से आचार्यश्री तुलसी ने यही किया। वे महात्मा गांधी के सपने को भी साकार देखना चाहते थे, जो उन्होंने आजादी के आंदोलन के समय बुना था।

हम भगवान महावीर के काल में थोड़ा झांकें। उस समय भी संकीर्णता और दायरों की बाड़ाबंदी, अंधविश्वास, विषमता और आपाधापी से समाज संत्रस्त था। श्रमण महावीर ने एक

त्राणदाता के रूप में इन सबके विरुद्ध आवाज उठाई। सन् 1949 में—जब अणुव्रत आंदोलन का प्रादुर्भाव हुआ—भारत की स्थिति भी महावीर के उस युग से मिलती-जुलती थी। इसीलिए आजादी के तुरंत बाद महात्मा गांधी ने समाजोत्थान के लिए काम करने की ठानी थी और उस दिशा में वे अग्रसर हुए। इसे क्रियात्मक रूप देने के लिए आचार्यश्री तुलसी नैतिक आंदोलन की राह पर चल पड़े। जिस तरह भगवान महावीर के काल में समाज को नैतिक-आध्यात्मिक दृष्टि से सुदृढ़ करना जरूरी था, वही बात आचार्यश्री तुलसी के काल में रही और दोनों अपने-अपने काल में इसी धारा की ओर अग्रसर हुए।

एक और उदाहरण है—नारी उत्थान का। आज की भाषा में हम इसे 'महिला सशक्तीकरण' भी कह लें। भगवान महावीर के काल में उन्होंने इसकी जो आवश्यकता महसूस की, कालांतर में आचार्यश्री तुलसी ने भी वही महसूस किया। नारी की दशा दोनों ही कालखंडों में कैसी रही—इतिहास इसका साक्षी है। श्रमण भगवान महावीर ने उस दिशा में जो कुछ किया, हम उनके काल में झांक कर देख सकते हैं। यही बात आचार्यश्री तुलसी के कार्यकाल में देखी जा सकती है।

नारी चेतना के लिए आचार्यश्री तुलसी ने 'नई मोड़' नाम से जो सिंहनाद किया, महिला जागरण के लिए जो स्वर फूंका—उसे हम आज फलदाई रूप में देख सकते हैं। एक समय था कि समाज में महिलाओं के शील का एक मात्र आधार पर्दाप्रथा थी। अशिक्षा, परावलंबन या परनिर्भरता, घर की चहार-दीवारी से बाहर न झांकने जैसी स्थितियां उस समय भयातुर करती थीं। आचार्यश्री तुलसी ने इन स्थितियों को सर्वथा अनुचित माना। गैर-बराबरी और नाइंसाफी के दंश को झेलने वाले महिला समाज के लिए आज आचार्यश्री तुलसी 'त्राणदाता' की मानिंद रहे हैं।

आज नारी समाज में शिक्षा का बोलबाला है। समाज हितकारी कामों में महिला समाज की अग्रणी भूमिका है। अ. भा. तेरापंथी महिला मंडल और उसकी सैकड़ों शाखाओं के माध्यम से समाज-हित के जो कार्य हो रहे हैं, उनको एक नजर से देखने की जरूरत है। बेशक अभी भी उनमें अनेक विसंगतियां विद्यमान हैं, पर एक तो उनको अब मिल ही गया है एक आकाश, जो उनका अपना है—अब उनकी आंखों के आगे खुल गया है। अब तो केवल विसंगतियों को निर्मूल करने की किसी तजवीज की जरूरत है और जिसके लिए मार्ग बन चुका है। हम उस समय और उन घटनाओं में झांकें, जब आचार्यश्री तुलसी ने महिला जागृति के लिए 'नई मोड़' नाम से सिंहनाद किया था। उस समय की स्थितियों से आज के हालातों की तुलना करें, हमें फर्क साफ प्रतीत होगा। ऐसा जोखिमभरा कदम आचार्यश्री तुलसी ने तब उठा लिया था। पर, वह सुचिंतित था, सुविचारित था और श्रमण महावीर की पीठिका और अभिप्रेरणा उनके 'निनाद' में रची-पची थी।

कहते हैं कि समय की नब्ज को, उसकी धारा को पहचानना और सही-सही आकलन कर लेना दूरदृष्टि का द्योतक है। आचार्यश्री तुलसी में निश्चय ही यह दूरदृष्टि थी। उनका संपूर्ण जीवन-फलक इसका प्रमाण है। लेकिन, वे दिव्यदृष्टि के धारक भी थे। दिव्यदृष्टि का धारक वही होता है जो दूसरों के जीवन में गहरा और बुनियादी परिवर्तन ला दे। जिसकी दिव्यदृष्टि हो और वह जिस पर पड़ जाए—मानिए कि वह निहाल हो जाता है। वे आध्यात्मिक पुरुष थे। जाहिर है उनकी दिव्यदृष्टि 'तमस' में से 'आलोक' को ही प्रकट करने वाली हो सकती है। अलबत्ता अनेक

किस्से ऐसे भी प्रचलित हैं कि जो भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त जीवन के आधार मान लिए जाते हैं। ऐसे किस्से समाज में दरकिनार नहीं हो सकते, पर वास्तविक दिव्यदृष्टि तो तमस से आलोक में ही देखी जा सकती है। (31 अगस्त, 2010) एक वृत्तांत आचार्यश्री तुलसी की दिव्यदृष्टि का एक सुबूत हम मान सकते हैं। वृत्तांत यह है–

श्री मालीराम शर्मा एक जाने-माने लेखक हैं। वे ताजिंदगी शिक्षा के सरोकारों से भी जुड़े रहे हैं। शिक्षा प्रशासन और प्रबंधन में भी प्रशासनिक अधिकारी के रूप में राजस्थान प्रदेश में उनकी पहचान है। उन्होंने बताया कि वे 84 वर्ष के हो रहे हैं। यह सब उनका एक स्थूल-सा परिचय है। मेरे लिए वे एक सजग, विचारशील, दिलचस्प और बहुश्रुत बड़े भाई हैं। हम मिले, तो कई तरह की बातें चल पड़ीं। इन्हीं बातों में मेरे संपादन में प्रकाशित हो रही 'जैन भारती' का जिक्र भी आ पड़ा। इसी जिक्र में आचार्यश्री तुलसी का प्रसंग चल गया। घटना तब की है; जब आचार्यश्री तुलसी ने श्रीडूंगरगढ़ में चतुर्मास प्रवास किया था। मालीरामजी बताते हैं कि श्रीडूंगरगढ़ में उनका वह अंतिम चतुर्मास था। तभी कुछ लोग आचार्यश्री तुलसी से संवाद के लिए मालीरामजी शर्मा को उनके पास ले गए। मालीरामजी प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्ति रहे हैं। बातचीत में सिगरेट पीने की अपनी आदत का जिक्र भी आचार्यश्री तुलसी के सम्मुख उन्होंने किया। आचार्यश्री तुलसी ने सिगरेट के अवगुण बताए और इसे छोड़ने का आग्रह किया। मालीरामजी बताते हैं कि न मालूम उनके आभामंडल का कैसा प्रभाव था कि सिगरेट छोड़ने की हामी भर ली। सिगरेट के अवगुणों को वे भी जानते थे और आचार्यश्री तुलसी के समक्ष इसे छोड़ने की हां भी वे भर गए थे, पर वे सिगरेट नहीं छोड़ सके। यह बताते हुए मालीरामजी की मुखाकृति और उनकी आंगिक भंगिमाएं मुझे कह रही थीं कि सिगरेट न छोड़ पाने के कारण वे घोर हीन-भाव महसूस करते रहे। मुझे बताया कि जब भी वे सिगरेट सुलगाते, मुंह पर रखते और कस खींचते तो आचार्यश्री तुलसी की छवि उनकी आंखों के आगे आ जाती। वे बताते हैं–'मैं अवसाद से घिर जाता। मुझे गहरी आत्म-ग्लानि होती। फिर भी सिगरेट नहीं छोड़ पाया।'

और, इसी के साथ मालीरामजी शर्मा कहते हैं कि–'जिस दिन उनका महाप्रयाण हुआ, मेरे मन में ऐसी घुटन मची कि मैं बता नहीं सकता। मैं गहरे हीन-भाव से ग्रस्त था। रह-रह ग्लानि हो रही थी कि मैंने उनके आगे सिगरेट छोड़ने की सहमति स्वेच्छा से दी थी और मैं यह क्या करता रहा? इसी ग्लानि और अवसाद में मैंने सिगरेट छोड़ने की ठान ली। शुभूजी! सोलह साल हुए, मैंने सिगरेट की ओर देखा तक नहीं है।'–वे जब यह बता रहे थे, मैं उनकी मुखाकृति पढ़ रहा था। उस क्षण उनके चेहरे की 'आभा' चमत्कारी-सी लगी थी। मालीरामजी की वाणी की बुलंदगी और कहने का अंदाज निराला है। वे बताते हैं–'एक एक्सीडेंट ने पांव से चलने में दिक्कत खड़ी कर दी है, इसलिए थोड़ा सहारा चाहिए, वरना कोई दिक्कत नहीं है।'–जैसे कि वे कह रहे हों कि– 'सिगरेट की लत छूटी तो जीवन सुखी हो गया।'

जिनकी दिव्यदृष्टि होती है, वे देहातीत होकर भी किसी के जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। हम इन्हें समझें तो। और, ये ही वे बातें हैं जो आचार्य तुलसी को महावीर का यशस्वी उत्तराधिकारी ठहराती है।

(**प्रस्तव** से)

मानवता के महाप्राण : आचार्यश्री तुलसी

लक्ष्मणसिंह कर्णावट

अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, रुढ़ि-उन्मूलन, नारी-जागृति, आगम-साहित्य-संपादन, समण श्रेणी, विशाल साहित्य-सृजन, मानव मात्र को नैतिक जीवन जीने के प्रेरणास्रोत, जैनविश्वभारती एवं जैनविश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय के सूत्रधार, आदि अनेक आयामों को स्थापित कर जीवनभर मानवीय मूल्यों के जागरण में प्रयत्नशील रहने वाले विरल व्यक्तित्व का नाम है—तुलसी।

युगबोध के साथ धर्म के प्रायोगिक स्वरूप पर बल देकर अध्यात्म एवं धर्म के प्रति लोगों में जागरूकता लाने के साथ-साथ मनुष्य को आध्यात्मिक-वैज्ञानिक पाठ पढ़ाने वाले, मानव मात्र का कल्याण करने में सक्षम संप्रदायविहीन मानवधर्म, जिसे हम अणुव्रत के नाम से जानते हैं, उसकी स्थापना कर मानव मात्र को नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले महापुरुष का नाम है युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी।

दीक्षा के पूर्व शिक्षा की अति आवश्यकता है, साधु अथवा साध्वी बनने के इच्छुक व्यक्तियों को दीक्षित करने के पूर्व शिक्षित करने की परिकल्पना को साकार रूप दिया आज से लगभग 70 वर्ष पूर्व पारमार्थिक शिक्षण संस्था के रूप में, जहां वैरागी भाई-बहिनों की शिक्षा और वैराग्य परीक्षण की प्रक्रिया का संपादन होता है। लगभग 800 से अधिक साधु-साध्वियों एवं समण-समणियों को पहले शिक्षित फिर दीक्षित कर एक कीर्तिमान स्थापित करने वाले एक मात्र जैनाचार्य रहे हैं—आचार्यश्री तुलसी।

सदियों से जकड़ी हुई रूढ़ियों के बीच पलता यह जैन एवं तेरापंथ समाज जहां मृत्यु भोज, पर्दाप्रथा, अशिक्षित नारी, मृत्यु के पश्चात साल-साल भर या और भी अधिक लंबे समय तक शोक पालना, वैवाहिक रीति-रिवाजों में अनावश्यक कुप्रथाओं (पगेलागणी, आगरणी, साड़ी ओढ़ाना, चार-चार टाइम तक बरात का रुकना, अनमेल विवाह इत्यादि) को नए मोड़ नाम से चलने वाली रीति-रिवाजों में बदलाव एवं व्यवस्थाओं का सरलीकरण करके इस भौतिक चमक-दमक के युग में मध्यम आय स्रोत वाले जन साधारण के स्वाभिमान को सुरक्षित रखने वाले इस महान समाज सुधारक का नाम है—आचार्यश्री तुलसी।

आर्थिक विषमताओं के युग में संपन्न परिवारों ने दहेज का प्रदर्शन एवं शाही विवाह समारोह आयोजित करके अपनी संपन्नता का प्रदर्शन एवं उसके द्वारा समाज पर नेतृत्व करना प्रारंभ कर दिया तथा दहेज की मांग एवं ठहराव ने असंपन्न परिवारों की प्रतिष्ठा पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाना प्रारंभ कर दिया था। ऐसे समय में दिग्भ्रमित समाज को दहेज की मांग, ठहराव, प्रदर्शन एवं परिचर्चा नहीं करने का न केवल उपदेश वरन लाखों-लाखों अनुयायियों को संकल्पित कराकर एवं आडंबर रहित विवाह समारोह का सदुपदेश देकर जीवन में एक आवश्यक बदलाव लाने वाले समाज-सुधारक का नाम है—आचार्यश्री तुलसी।

भावी पीढ़ी सुसंस्कारित बने, इसके लिए गांव-गांव, नगर-नगर में छोटे-छोटे बच्चों को ज्ञानशाला के माध्यम से संस्कारित करने का उपक्रम प्रारंभ हो कर आज देशभर में लगभग 300 से अधिक ज्ञानशालाएं चल रही हैं जहां शैशवावस्था से ही बालक को नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देकर उसे सुसंस्कारित किया जाता है। इसी तरह महिला-जागरण एवं महिला-शक्ति का सुनियोजित संगठन एवं उसके माध्यम से समाज-सेवा का बहुत बड़ा दायित्व निर्वहन, युवक परिषद के माध्यम से भी सेवा, संस्कार एवं संगठन को बल देने का उपक्रम और इस तरह से युवा-शक्ति का सही नियोजन, इन सबके प्रेरणा स्रोत रहे हैं आचार्यश्री तुलसी।

न केवल जैन समाज लाभान्वित हो वरन देश का हर नागरिक सही लाभान्वित हो, आज तेरापंथ धर्म संघ के लाखों-लाखों अनुयायियों द्वारा जगह-जगह शिक्षण संस्थाएं चलाकर लोगों को शिक्षित एवं संस्कारित करने का जो उपक्रम चल रहा है, उसके मंत्रदाता रहे हैं—आचार्यश्री तुलसी।

बीसवीं सदी की राजनैतिक उठा-पठक में अखंड भारत की राष्ट्रीय एकता को पोषण देने के साथ भारतीय संस्कृति की शालीनता एवं अनेकांत दर्शन को आत्मसात करते हुए सापेक्षवाद का साक्षात्कार कराने हेतु सही उद्घोष—'निज पर शासन, फिर अनुशासन'—देने वाले महापुरुष का नाम है—भारतज्योति आचार्यश्री तुलसी।

जैन सिद्धांतों के अनुरूप साधुजीवन की कठोरचर्या का पालन करते हुए किसी साधु या साध्वी का विदेशों में धर्म प्रचार हेतु जाना असंभव-सा है। इस कारण जैनधर्म व्यापक नहीं बन पाया। जैन धर्म को जन-धर्म बनाने के उद्देश्य से पांच महाव्रतों में से सिर्फ आहार-निहार एवं विहार में कुछ छूट देकर आपने साधु एवं गृहस्थ के बीच एक नई श्रेणी का सूत्रपात किया जिसे हम समण श्रेणी कहते हैं। आज हमारे समण-समणियों ने विदेशों में जैन धर्म का व्यापक प्रचार करके उसे जन-जन तक पहुंचाया है। देश, काल एवं भाव को समझते हुए आपकी सोच 100 वर्ष आगे चलती थी। अपने मूल को सदा सुरक्षित रखते हुए आपने परिवर्तन को सदा अपेक्षित माना और उसे गति दी। आपके इस अवदान के कारण नए तीर्थ के रूप में शुरुआत करने वाले संस्थापक का नाम है—आचार्यश्री तुलसी।

पंजाब से कन्याकुमारी एवं बंगाल से गुजरात तक एक महान परिव्राजक पदयात्री के रूप के आपने जीवन में लगभग एक लाख किलोमीटर की पदयात्रा कर भारत-भूमि के हर कस्बे एवं शहर में अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से नैतिकता की अलख जगाने का अथक प्रयास किया। लाखों-लाखों व्यक्तियों ने आपके संपर्क में आकर व्यसनमुक्त एवं नैतिक जीवन जीने का संकल्प लिया। यही नहीं, प्रेक्षाध्यान एवं जीवन विज्ञान के माध्यम से व्यक्ति को तनावमुक्त एवं स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा एवं प्रायोगिक रूप दिया। आपके जीवन-विज्ञान अभियान को आज कई राज्यों में शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्यक्रमों में समाविष्ट कर दिया गया है, जिससे हमारी आने वाली पीढ़ी सुसंस्कारी, व्यसन-मुक्त, नैतिक, स्वस्थ एवं तनावमुक्त जीवन जी सकेगी। गरीब की झोपड़ी से लेकर राष्ट्रपति भवन तक व्यसन-मुक्त नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाले इस महान परिव्राजक का नाम है—संत तुलसी।

विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र भारत में कई प्रकार की राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने में आपने समय-समय पर प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया, चाहे वह राजीव-लोंगोवाल समझौता हो अथवा सन् 1994 में पार्लियामेन्ट में आए गतिरोध को दूर करने का काम हो। राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के प्रबल समर्थक के रूप में आपने समय-समय पर इस संदर्भ में जो मार्गदर्शन दिया वह बहुत ही विवेकपूर्ण था। 'भारत ज्योति', 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' एवं 'हकीम खां सूर सम्मान' से विभूषित इस महामना ने जैनधर्म के सभी संप्रदायों को भी एकता के सूत्र में बांधने के सफलीभूत प्रयास किए। अनेकांत सिद्धांत को प्रायोगिक रूप से जीवन में उतार कर सही दिशाबोध देने वाले महान व्यक्तित्व का नाम है–तुलसी।

शताब्दियों पुराने हमारे जैनआगम जो कि प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में लिखे गए थे, उन ग्रंथों में अपार ज्ञान भरा पड़ा है। जैन धर्म का अतीत कितना सुसंस्कृत था, इसका प्रतिबोध इन्हीं आगमों से होता है। इन आगमों का सफल संपादन कर इन्हें वर्तमान हिंदी भाषा में अनुवादित प्रस्तुत करने का जो श्रम साध्य कार्य आपके जीवन काल में, लगभग 42 वर्षों तक अनवरत चला, तेरापंथ धर्मसंघ के प्रबुद्ध साधु-साध्वीगण की पूरी टीम, साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी जैसे आगम मर्मज्ञ ज्ञानियों का श्रम लगा एवं उन 42 वर्षों के बहुमूल्य श्रम की निष्पत्ति के रूप में जो-जो आगम संपादित होकर प्रकाशित हुए, वे आज जैनजगत की अमूल्य धरोहर बन चुके हैं। इन सभी ग्रंथों को संपादित करने की योजना एवं उसकी क्रियान्विति तक के दायित्व को निर्वहन करने वाले वाचनाप्रमुख हैं–आगमपुरुष आचार्यश्री तुलसी।

'तुलसी वाङ्मय के रूप में' जैन-साहित्य की एक अमूल्य निधि बनने जा रही है। इस सृजनशील रचनाकार सरस्वती पुत्र का नाम है–आचार्यश्री तुलसी।

जैन-संस्कृति आज के वैज्ञानिक युग में उपयुक्त संसाधनों की कमी के कारण कहीं सिमटकर न रह जाए, इस दृष्टि से आने वाले युग में जैनधर्म एवं जैन-संस्कृति को युगबोध के रूप में प्रस्तुत करने में जैनविश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय की बहुत बड़ी उपयोगिता सिद्ध है। इस मान्य विश्वविद्यालय की आवश्यकता एवं उपयोगिता की ओर चिंतन करके उसकी स्थापना करने वाले महामनीषी का नाम है–आचार्यश्री तुलसी।

आपके ऐतिहासिक एवं उपलब्धिपूर्ण 59 वर्षों का आचार्यत्व काल जिसमें आप मानवता को ऊपर उठाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। जीवन के संध्याकाल में आपने स्वमेव अपने आचार्य पद का विसर्जन कर अपने स्थान पर आचार्य महाप्रज्ञ जैसे विश्व के महान दार्शनिक को परिवेष्टित किया, जैनधर्म के ज्ञात इतिहास में ऐसा दुर्लभ पृष्ठ कहीं नजर नहीं आता जिसमें किसी आचार्य ने अपने जीवन काल में पद का विसर्जन कर दिया हो। नत्थू से नथमल, नथमल से महाप्रज्ञ और महाप्रज्ञ से आचार्य महाप्रज्ञ बनाने वाले कुशल शिल्पकार का नाम है–आचार्यश्री तुलसी।

आचार्यश्री तुलसी के कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व ने जो कुछ दिया वह त्रैकालिक सत्य है और त्रैकालिक सत्य कभी भी निवर्तमान नहीं होता। वह जिस अद्वैत का दर्शन कराता है उसकी तो केवल अनुभूति ही की जा सकती है। उस अद्वैत का शाश्वत नाम है–आचार्यश्री तुलसी।

वैसे तो आचार्य तुलसी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर सैकड़ों ग्रंथ लिखे जा सकते हैं, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने आचार्यश्री तुलसी के विशाल व्यक्तित्व को अपनी लेखनी में समेटने का प्रयास किया है। महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने आचार्य तुलसी की दैनिक डायरी जिसे स्वयं आचार्य तुलसी ने लिखी है, को संपादित करके 'मेरा जीवन मेरा दर्शन' नाम से 25 खंडों में आचार्यश्री तुलसी की आत्मकथा लिखी है। इसके अतिरिक्त आचार्य तुलसी पर कुछ ग्रंथ भी प्रमुखाश्रीजी द्वारा लिखे जा चुके हैं जो 'तुलसी वाङ्मय' के नाम से प्रकाशित हो रहे हैं। लाखों पृष्ठों का लेखन भी जिस

व्यक्तित्व की पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाया, वह महान व्यक्तित्व है–गणाधिपति तुलसी।

जैन एकता के प्रबल पक्षधर के रूप में आपने अपने जीवनकाल में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परंपरा के कई जैनाचार्यों से संपर्क एवं शास्त्र सम्मत चर्चा करके पूरे जैन समाज की संवत्सरी एक साथ एक ही दिन मनाई जाए, इसका प्रयास किया। समन्वय के द्वारा तिथि तय करने हेतु अपना कोई पूर्वाग्रह भी नहीं रखा, यह अलग बात है कि इस कार्य में पूर्ण सफलता नहीं मिली। जैन एकता के संदर्भ में प्रयासरत व्यक्तियों की अनुक्रमणिका में जिसका पहला नाम लिखा जाएगा वह होगा–तेरापंथ के नवमाचार्य गणाधिपतिश्री तुलसी।

भारत की आजादी के समय से लेकर सन् 1997 तक लगभग 50 वर्षों में भारत गणतंत्र के सभी राष्ट्रपति महोदय, प्रधानमंत्री, कई राज्यों के मुख्य मंत्रिगण एवं अन्य राजनेता, संसद सदस्यगण से लेकर देश के प्रबुद्ध साहित्यकार, कविगण, बुद्धिजीविवर्ग, पत्रकार इत्यादि विशिष्ट महानुभावों के साथ आपका संपर्क एवं विचारों का आदान प्रदान रहा है, जिसके द्वारा आपने उन्हें राष्ट्र उत्थान में नैतिकता की आवश्यकता एवं उसका प्रायोगिक रूप अणुव्रत आंदोलन के महत्त्व को परिभाषित किया है। आपका उद्देश्य व्यक्ति को धार्मिक उपासना पद्धति से बाहर निकालकर नैतिक एवं चरित्र संपन्न नागरिक बनाना रहा, जिसकी संपूर्ति हेतु देश के कोने-कोने में परिभ्रमण कर करोड़ों जन साधारण को व्यसन-मुक्त एवं नैतिक आचरण अपनाने के उपदेश आपने दिए।

इस विरल व्यक्ति का यह जन्मशताब्दी वर्ष (कार्तिक शुक्ला द्वितीया, वि.सं. 2070 से 2071) हम सब के लिये प्रेरणा का स्रोत है। जिसने जीवनभर भगवान आशुतोष की तरह स्वयं विष पीकर मानव मात्र को जीवन मूल्य के सही अवदान रूपी अमृत का पान कराया है, जिसके विराट व्यक्तित्व की व्याख्या करने में कविगण, लेखक और वक्तागण कोई भी पूर्ण सफल नहीं हुए, उस दिव्य आत्मा तुलसी को वंदन, शत-शत वंदन। ❑

मैं अनुभव करता हूं कि व्यक्ति के पास कमी समय की नहीं, उसके सम्यक् नियोजन की है। बारह-एक बजे सोना और आठ-नौ बजे उठना आज सामान्य बात हो गई है। बीच में जितना समय रहता है, उसका अधिक हिस्सा व्यवसाय के नाम समर्पित होता है। कुछ समय खाने-पीने, घूमने एवं मित्रों के साथ गपशप में बीतता है। दिन और रात का एक मूल्यवान हिस्सा टीवी. देखने में पूरा होता है। इन कामों में दस मिनट की कटौती नहीं हो सकती और धर्मोपासना के खाते में जीरो भी रहे तो कोई दर्द नहीं होता।

–आचार्य तुलसी

हर युग तुमको याद करेगा

कन्हैयालाल छाजेड़

बीसवीं सदी में एक युगपुरुष जनमा था–गांधी, जिसकी पहचान थी शरीर पर लंगोटी, कंधों पर चद्दर, हाथ में लाठी, तेज गति, तेज सोच, तेज निर्णय का समन्वित मानव। जिसने बिना शस्त्र संकल्प-शक्ति को हथियार बनाया और ब्रिटिश सत्ता की गुलामी से देश को स्वतंत्र करवाया। स्वतंत्रता के इतिहास का एक कालजयी व्यक्तित्व था महात्मा गांधी और उसी सदी में अध्यात्म के क्षेत्र में एक युगपुरुष जनमा जिसकी पहचान बनी–'मैं सबसे पहले मानव हूं, फिर संत, फिर आचार्य, फिर जैन।' मानवता के कल्याण में अपनी सारी शक्ति, श्रम, संयम और संघीय कर्तृत्व को जोड़ दिया। संप्रदाय की सीमाओं में एक अप्रतिबद्ध व्यक्तित्व का इतिहास अमिट आलेख बन गया।

आचार्यश्री तुलसी ने मनुष्य के चरित्र निर्माण में अनेक अवदान दिए। उनके अवदानों का लेखा-जोखा कोई नहीं कर सकता। हर दिशा में, हर संदर्भ में, हर क्षेत्र में उन्होंने अपना योगदान दिया। हर चिंतन और क्रियान्विति में नवीनता, मौलिकता, दूरदर्शिता और उपयोगिता का परिचय दिया। चिरऋणी है यह संघ, यह समाज, यह परंपरा और यह संस्कृति; क्योंकि उन्होंने सबको जीना सिखाया। रूढ़ता के शिकंजे से मुक्त किया। जीने की स्वस्थ शैली दी। उन्होंने विश्वास दिया स्वयं को बदलने का, क्योंकि बिना बदले धर्म जीवन में उतरता नहीं।

आचार्यश्री तुलसी व्यक्तित्व निर्माण की दिशा में समय से भी तेज चले। यही वजह है कि आज एक छोटे से धर्म संप्रदाय में शिक्षा, शोध, साहित्य, सेवा, साधना, संस्कृति सभी में अप्रतिम प्रतिभाओं का उदय हुआ है। आस्थाशील, चरित्रशील, निष्ठाशील, आदर्शशील युवापीढ़ी सक्रिय कार्यकर्ताओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। महिलाओं ने घर की देहरी से बाहर आकर स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय दिया है। स्वस्थ समाज की संरचना में उनकी अनुशासना और वत्सलता ने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। उन्होंने सबको अच्छा बनाना चाहा, जो न बन सके, यह उनका दुर्भाग्य, पर आचार्य तुलसी ने संस्कार और संस्कृति की एक दीर्घा खड़ी कर दी।

आचार्यश्री तुलसी की आचार्य अनुशासना इतनी तेजस्वी, वर्चस्वी रही कि अब संघ का विकास सदियों तक सुरक्षित है। हम सौभाग्यशाली हैं कि तुलसी युग में जनमे। उनका दर्शन पा सम्यग्दृष्टि खुली। स्वयं में कुछ होने का विश्वास जागा। कर्तृत्व ने कर्मभूमि बनाई। उनकी प्रेरणा ने मुझ जैसों को नई पहचान दी। आज वे हमारे बीच नहीं हैं। कई वर्ष बीत गए। आज भी आंखें उन भाव मुद्राओं की खोज में हैं। मन उन्हें सुनना और जीना चाहता है। उनके सपनों को सच में ढालने के लिए संकल्पित होना चाहता है, पर अनुपस्थिति में उन्हीं का प्रतिबिंब आचार्य महाश्रमण अपनी उपस्थिति दे रहे हैं, इस विश्वास और दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ कि मैं आचार्य तुलसी के द्वारा शुरू किए वो सभी काम पूरे करूंगा, जिन पर उन्होंने हमारे लिए हस्ताक्षर किए हैं।

हम श्रद्धाप्रणत हैं उस महामानव के प्रति जिन्होंने जीवन का दर्शन दिया। हम आशान्वित हैं स्वयं, स्वयं के प्रति कि पूज्य गुरुदेव ने हमें जीना सिखाया, प्रयोग और प्रशिक्षण दिया। उसे हम जीएं, समृद्ध करें और भावी पीढ़ी को भी इसी रास्ते पर अग्रसर करें।

विशद चरितो नाम तुलसी

रूपचन्द सेठिया

चार दृष्टियों के आधार पर चरित्र का मूल्यांकन किया जा सकता है–

1. कुछ व्यक्तियों का चरित्र विशिष्ट भी होता है और विशुद्ध भी होता है। 2. कुछ व्यक्तियों का चरित्र विशिष्ट तो होता है लेकिन विशुद्ध नहीं होता है। 3. कुछ व्यक्तियों का चरित्र विशिष्ट तो नहीं लेकिन विशुद्ध होता है। 4. कुछ व्यक्तियों का चरित्र विशिष्ट भी नहीं होता और विशुद्ध भी नहीं होता है।

प्रथम श्रेणी में हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का स्मरण कर सकते हैं, जिनका चरित्र विशिष्ट भी था और विशुद्ध था। दूसरी श्रेणी में हम लंकापति रावण का नाम प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसका चरित्र विशिष्ट तो था लेकिन विशुद्ध नहीं था। तीसरे क्रम में हम श्रमण भगवान महावीर के परम भक्त 'पूनिया श्रावक' का नाम उद्धृत कर सकते हैं, जिसका चरित्र विशिष्ट तो नहीं था लेकिन विशुद्ध था। चौथी श्रृंखला में रामचरितमानस के ही एक पात्र कुंभकरण के नाम पर विचार कर सकते हैं, जिसका चरित्र विशिष्ट तो नहीं था लेकिन विशुद्ध था।

जैन धर्म की सैद्धांतिक मान्यताओं के आधार पर तीर्थंकर चरित्र को सर्वोत्तम व सर्वोत्कृष्ट चरित्र माना जाता है। तीर्थंकर स्वयं संबोध प्राप्त करते हैं, धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं, तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हैं। वे धर्म के आदिपुरुष कहलाते हैं, प्रज्ञा का दीप जलाकर लोक में धर्म का उद्योत करते हैं, अतः तीर्थंकर चरित्र को अतिविशिष्ट व विशुद्धातिविशुद्ध श्रेणी में रखा जा सकता है।

आचार्यश्री तुलसी इस युग की महान विभूति थे। वे तेरापंथ धर्मसंघ के विकास पुरुष थे। महामानव, महापुरुष, महानज्योति, लौहपुरुष आदि अलंकरणों से उनके कर्तृत्व को उजागर करने का प्रयास किया जाता है। उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व को मापने के लिए सारे शब्द और पैमाने छोटे पड़ जाते हैं।

ऐसे ही विशद चरित्र के नायक का नाम था–'तुलसी।'

हर व्यक्ति का अपना चिंतन और अपना दृष्टिकोण है। दूसरों का चिंतन गलत है और मेरा चिंतन सही है, ऐसा आग्रह मैं क्यों करूं? मुझे भगवान महावीर का अनेकांत दर्शन प्राप्त है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के चिंतन में सत्य का अंश हो सकता है। मैं अपने चिंतन को न तो संपूर्ण सत्य मानता हूं और न दूसरों के चिंतन को नितांत असत्य स्वीकार करता हूं।

–आचार्य तुलसी

तुलसी वाङ्मय : अभिनव प्रस्तुति

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

संपूर्ण संघ और समाज के लिए यह गौरव की बात है कि आचार्य तुलसी का संपूर्ण साहित्य 108 पुस्तकों के रूप में एक साथ प्रकाशित होकर जिज्ञासु पाठकों तक पहुंच रहा है। यह खोज का विषय होगा कि किसी एक व्यक्ति द्वारा इतना विशाल साहित्य लिखा गया है।

साहित्य भी ऐसा, जिसमें साहित्य की हर विधा मुखर है। चाहे प्रवचन हो या वैचारिक आलेख, काव्य वैभव से समृद्ध आख्यान हो या गीतों का सर्जन, यात्रावृत्त हो या जनसंवाद, आगम अनुसंधान हो या तत्त्व दर्शन से जुड़े गहन गंभीर संदर्भ, बोधपरक कहानियां हो या फिर आत्म-कथा (डायरी)। भाषा चाहे राजस्थानी हो, संस्कृत हो या फिर हिंदी–हर भाषा में गतिशील और प्रभावक साहित्य उपलब्ध है। ऐसे ऋषिपुरुष साहित्यकार आचार्य तुलसी के जन्म शताब्दी वर्ष पर प्रकाशित तुलसी वाङ्मय उन सब लोगों के लिए प्रकाशदीप बनेगा जिन्होंने सलक्ष्य इसे पढ़ना शुरू करेंगे। उनकी जीए गए सच को साधना के साथ स्वयं जीएंगे और आस्था, विश्वास और निष्ठा के साथ जीवन निर्माण की इस परंपरा का योगक्षेम करते रहेंगे।

कुछ व्यक्ति उच्चकोटि के वक्ता होते हैं, पर एक पृष्ठ भी लिख नहीं पाते। कुछ व्यक्ति अच्छे लेखक होते हैं, उनके विचारों में नई स्फुरणा होती है, पर उनमें वक्तृत्व की क्षमता नहीं होती। कुछ व्यक्ति वेधक कविताएं लिखते हैं, पर संगान के प्रसंग में उन्हें मौन रहना पड़ता है। कुछ व्यक्ति बहुत मधुर और आकर्षक संगान करते हैं, पर उनके सृजन की धार भोथरी रहती है। कुछ व्यक्ति गद्य-लेखन के निकष पर खरे उतरते हैं, पर पद्य-रचना उनके वश की बात नहीं होती। कुछ व्यक्ति हिन्दी, संस्कृत आदि कई भाषाओं में आशुकवित्व की प्रतिभा से संपन्न होते हैं, पर गद्य-लेखन में मात खा जाते हैं। कुछ व्यक्ति तर्कशास्त्र के जानकार होते हैं, पर दर्शनशास्त्र का ककहरा भी नहीं जानते। कुछ व्यक्ति दर्शनशास्त्र में पारंगत होते हैं, पर प्रमाण, नय आदि तार्किक विषयों से अछूते रह जाते हैं। कुछ व्यक्ति न्याय और दर्शन को समझते हैं, पर योगशास्त्र की अभिज्ञता उनमें नहीं होती। कुछ व्यक्ति योगविद्या में विशारद होते हैं, पर अन्य विषयों का प्रकाश उन तक नहीं पहुंचता। इस प्रकार विश्लेषण करते-करते हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस धरती पर कोई विरल व्यक्तित्व ही ऐसा होता है, जिसमें सब प्रकार की कलाएं व अर्हताएं एक साथ निखार पाती हों।

कर्तृत्व की विलक्षणता

बीसवीं शताब्दी के महनीय पुरुष आचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व व कर्तृत्व में अवगाहन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनका सृजनात्मक संसार अनूठा था।

देश की महान विभूतियों के जीवन-सागर में गोताखोरी का एक अलग ही अनुभव होता है। उनकी रचनाधर्मिता का सर्वोपरि बिन्दु यह है कि उनका कर्तृत्व हर किसी को अपने-अपने तरीके से समझने का आयाम देता है। आचार्यश्री ने अपने विचारों के वातायनों को सदा खुला रखा। उनके सामने इतने कैनवस थे कि उन्होंने जब जिस पर जो कुछ उकेरना चाहा, उकेर कर रख दिया। उनको जानने-समझने के लिए कोई नया ही शास्त्रशिल्प रचना होगा, अन्यथा उनको पहचानना बहुत मुश्किल है।

वे एक शक्तिसम्पन्न आचार्य थे। उन्होंने जो कुछ सोचा, करके दिखा दिया। उन्होंने न तो कभी पीछे मुड़कर देखा और न परिस्थितियों की अधीनता स्वीकार की। निराश होना तो उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वे कभी असफल नहीं हुए। अपनी हर असफलता को उन्होंने एक बोधपाठ के रूप में स्वीकार कर निरन्तर आगे बढ़ने का मानस बनाए रखा। आचार्यश्री ने जो-जो रचनात्मक अवदान दिए, उनमें एक कालजयी अवदान है उनकी साहित्यिक सम्पदा।

आचार्यश्री के साहित्य में अवगाहन करने पर प्रतीत होता है कि प्रस्तुत साहित्य मानवता की मुंडेर पर देदीप्यमान चेतना का चिराग है। लोकमंगल की प्रदीप्त लौ है। संस्कारों का सुधाकलश है। संस्कृति और सभ्यता का आईना है। समाज-सुधार का पथदर्शन है। जीवन-विकास का अभिलेख है। अतीत व अनागत का प्रतिबिम्ब है। परिष्कृत विचारधाराओं की सम्पदा है। युगीन समस्याओं का समाधान है। इतिहास का आलोक है। संस्कार-निर्माण या व्यक्तित्व-निर्माण की कुंजी है। जीवन की सचाइयों का प्रकाश है। भारतीय दर्शन एवं जैनदर्शन की धड़कन है। संवेदनाओं का सरोवर है और जीवन के लिए पाथेय है।

जैन आगमों का सम्पादन

आचार्यश्री की सृजन-चेतना बहुआयामी थी। उन्होंने केवल साहित्य का ही सृजन नहीं किया, साहित्यकारों का भी सृजन किया। उनके द्वारा सृजित, प्रेरित और प्रोत्साहित साहित्यकारों का सृजन भी भारतीय साहित्य की समृद्धि में योगभूत बना है।

साहित्य के क्षेत्र में आचार्यश्री का एक उल्लेखनीय अवदान है—आगम-साहित्य का सम्पादन। प्राकृत भाषा में निबद्ध जैन-आगमों का आधुनिक/वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन इस युग की महती अपेक्षा थी। आचार्यश्री ने इस अपेक्षा का अनुभव किया और सन् 1955 में सम्पादन की सिद्धश्री लिखकर एक नया अभियान प्रारम्भ कर दिया।

उस अभियान के अन्तर्गत बत्तीस आगमों के मूल पाठ का सम्पादन तथा कतिपय आगमों के हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि लिखने का काम उनके सान्निध्य में ही पराकाष्ठा तक पहुंच गया था। अवशेष कार्य का सिलसिला उनके उत्तरवर्ती आचार्यों के मार्गदर्शन में चल रहा है। आचार्यश्री ने अपने जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण अवदान दिए। उनमें यह एक ऐसा अवदान है, जिसके लिए पूरा जैन समाज और विद्वज्जगत उनका ऋणी रहेगा।

जीवन और दर्शन

आचार्यश्री के साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है—आत्मकथा। पचीस खण्डों में समाहित 'मेरा जीवन : मेरा दर्शन' ग्रन्थमाला आचार्य तुलसी की आत्मकथा है। आत्मकथा-लेखक यदि पूरी ईमानदारी के साथ अपने जीवन के सभी पक्षों को उजागर करे तो वह साहित्य की उत्कृष्ट विधा हो सकती है। क्योंकि इसमें विचारों का मरुस्थल नहीं, अनुभवों का सततप्रवाही निर्झर बहता है।

आचार्य तुलसी की आत्मकथा दो-चार सौ पृष्ठों में सीमित जीवन-कहानी नहीं है। इसका विस्तार अपने-आपमें हजारों पृष्ठों के दस्तावेज हैं। इन दस्तावेजों का आलेखन केवल उपलब्धियों के द्वीपों पर बैठकर किया गया जीवन का पुनरवलोकनमात्र नहीं है। यह जीवन में मिलने वाली सफलताओं और

असफलताओं की सप्रमाण प्रस्तुति है। ऐसा वही कर सकता है, जो अध्यात्म की ऊंचाइयों तक पहुंचने में सफल हो जाता है। आचार्यश्री के जीवन और दर्शन को समग्रता से पढ़ने वाले इस सचाई का अनुभव कर सकते हैं कि उन्होंने अपना जीवन कितनी सरलता से खोलकर रख दिया है।

अपनी आत्मकथा के अतिरिक्त आचार्यश्री ने भगवान महावीर, आचार्य भिक्षु, प्रज्ञापुरुष जयाचार्य और महामनस्वी कालूगणी के जीवन को भी आलेखित किया है। इनके जीवन का आलोक भी पाठकों का पथ प्रशस्त कर सकता है।

आलेख-साहित्य

तुलसी वाङ्मय की एक विधा है समय-समय पर लिखे गए आलेखों का विषयबद्ध वर्गीकरण। तेरापंथ, अध्यात्म, जैन दर्शन, अहिंसा धर्म, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, शिक्षा, युवा, महिला आदि विषयों के साथ-साथ समसामयिक संदर्भों पर भी काफी कुछ लिखा हुआ है। प्रश्नों के माध्यम से जिज्ञासु लोगों को दिए गए समाधान भी इस विधा के अन्तर्गत हैं। बहुआयामी प्रस्तुत विधा का स्वाध्याय पाठक को आचार्यवर की बहुश्रुतता का परिचय देता हुआ उसके ज्ञानवर्धन का सशक्त माध्यम बन सकता है।

प्रवचन-साहित्य

तुलसी वाङ्मय का एक विशिष्ट विभाग है– प्रवचन-साहित्य। आचार्यश्री ने लगभग छह दशकों तक प्रवचन किए। उनके प्रवचन की शैली निराली थी। हजारों-हजारों श्रोताओं को मुग्ध करने वाली उनकी वाणी वातावरण में लंबे समय तक रस घोलती रहती थी। प्रवचन में कही गई बातें अनायास ही श्रोताओं के लिए उनकी जटिल समस्याओं की समाधायक बन जाती थीं। उनके समग्र प्रवचन उपलब्ध नहीं हैं। जितने उपलब्ध हैं, वे सभी सम्पादित नहीं हो पाए हैं। जितने सम्पादित हैं वे धर्मसंघ की एक अमूल्य निधि के रूप में सहेजकर प्रस्तुत किए गए हैं।

आख्यान आदि पद्यात्मक साहित्य

साधु की दिनचर्या का एक अंग है **प्रवचन/व्याख्यान करना।** प्रवचन का मुख्य आधार होता है आगम-साहित्य। आगमाधारित प्रवचन के बाद आख्यानप्रधान प्रवचन करने की भी परम्परा रही है। इस संदर्भ में सेवाभावी मुनिश्री चम्पालालजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया–'हम व्याख्यान में जिस-किसी के द्वारा लिखित आख्यान, गीत आदि का उपयोग करते हैं। कृपा कर आप कुछ आख्यानों व गीतों की रचना करें तो हमारे लिए बहुत सुविधा हो जाएगी।' आचार्यवर ने इस अनुरोध पर ध्यान दिया और कुछ आख्यान एवं उपदेशात्मक गीतों का निर्माण कर दिया। यह साहित्य सुबोध, सरस और प्रेरक भी है। इसका यथेष्ट उपयोग हो रहा है।

आख्यान-साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है–जीवनवृत्तों की काव्यात्मक प्रस्तुति। आचार्यश्री कलम के जादूगर थे। काव्यात्मक जीवनवृत्तों के चित्रण में जो जीवन्तता है, उसके आधार पर ऐसा परिलक्षित होता है कि रचनाकार कथानायक की जीवन-यात्रा में साथ-साथ रहे हैं। चित्रण चाहे प्रकृति का हो, सभ्यता का हो, इतिहास का हो अथवा प्रत्यक्ष रूप में घटित घटनाओं का, उसमें इतनी सजीवता है कि उसे पढ़ते-पढ़ते पाठक भावविभोर हो उठता है।

पद्य साहित्य में अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएं भी हैं, जिनमें कुछ रचनाएं नवदीक्षित साधु-साध्वियों के संस्कार-निर्माण की दृष्टि से की गई हैं। तेरापंथ-प्रबोध, अध्यात्मपदावली, आयारो की अर्हत्वाणी, प्रेक्षासंगान आदि कुछ कृतियां विशेष उद्देश्य के साथ निर्मित की गई हैं। श्रावक-समाज को ध्यान में रखकर लिखा गया श्रावक-सम्बोध श्रावकाचार का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मर्यादा-महोत्सव और भिक्षु-चरम-महोत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष लिखे जाने वाले गीतों के संकलन भी इतिहास की अनमोल धरोहर हैं। परमेष्ठीपंचक आदि अनेक गीत तीर्थंकरों व आचार्यों की स्तुति में

लिखे गए हैं। साधु-साध्वियों के प्रति लिखे गए गीत रचनाकार की प्रमोद भावना के अभिव्यंजक हैं। कुल मिलाकर यह साहित्य बहुजनभोग्य होने के साथ-साथ अनेक दृष्टियों से उपयोगी है।

संस्कृत-साहित्य

आचार्यश्री ने हिन्दी और राजस्थानी भाषा के साथ-साथ संस्कृत भाषा में भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों में जैनसिद्धांतदीपिका, भिक्षुन्यायकर्णिका और मनोनुशासनम् क्रमशः दर्शन, न्याय और योग के ग्रन्थ हैं। साधु-साध्वियों को उपर्युक्त विषयों का गंभीर अध्ययन कराने के उद्देश्य से सूत्रशैली में विरचित ये ग्रन्थ विद्वज्जगत में समादृत हो चुके हैं।

आचार्यश्री एक धर्मसंघ के अनुशास्ता थे। संघबद्ध जीवन के लिए अनुशासन और व्यवस्था आवश्यक होती है। साधुचर्या में आने वाले उतार-चढ़ावों की स्थिति में कुछ आलंबन उपलब्ध हो जाएं तो संघबद्ध जीवन में भी शान्ति से समय बीत सकता है। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखकर आचार्यश्री ने पंचसूत्रम् की रचना की। यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो किसी भी धार्मिक संगठन के लिए दिशासूचक बन सकता है।

शिक्षाषण्णवतिः, कर्तव्यषट्त्रिंशिका, संघषट्त्रिंशिका आदि रचनाएं साधु-साध्वियों पर आचार्यश्री के विशेष अनुग्रह की प्रतीक हैं। उनके बहुमुखी शिक्षण-प्रशिक्षण में ये ग्रन्थ बहुत उपयोगी हैं।

संस्कृत-साहित्य के एक भाग में स्तुतिपरक और प्रासंगिक पद्यों का एकत्रीकरण है। रचना की विविधता रचनाकार की आशुग्राही मेधा का परिचय देती हुई संस्कृतरसिक पाठकों को सरसता में निमज्जित करने वाली है।

संस्कृत भाषा में आचार्यश्री की कुछ गद्य रचनाएं भी हैं, जो उनके संस्कृत भाषा के वैदुष्य की साक्षी बन रही हैं। निबन्धों, वक्तव्यों, कथाओं आदि के माध्यम से संस्कृत गद्य साहित्य को समृद्ध करने वाली ये रचनाएं विद्यार्थी पाठकों को संस्कृत भाषा के गंभीर अध्ययन के लिए प्रेरित भी कर सकती हैं।

पत्र-संदेश-साहित्य

आचार्यश्री द्वारा साधु-साध्वियों के नाम प्रदत्त पत्र एवं विभिन्न लोगों को दिए गए संदेश तुलसी वाङ्मय की एक विशिष्ट विधा है। जिस व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर ये पत्र/संदेश दिए गए, उसने तो धन्यता का अनुभव किया ही, उससे परिचित और सम्बन्धित अनेकानेक व्यक्ति जब-जब इन्हें पढ़ते हैं, गौरव का अनुभव करते हैं। इसी शृंखला में आचार्यश्री के साहित्य से संकलित या उनके द्वारा लिखित सुभाषितम् भी तुलसी वाङ्मय का एक अंग है।

संक्षेपरुचि पाठकों के लिए उपयोगी होने के साथ-साथ इस विधा में इतने प्रेरक वाक्य भी उपलब्ध हैं, जो जीवन की दिशा को नया मोड़ दे सकते हैं।

आचार्यश्री की जन्मशताब्दी के ऐतिहासिक अवसर पर तुलसी वाङ्मय की नए परिवेश में प्रस्तुति उनके कर्तृत्व को समझने का एक उपक्रम है। इस उपक्रम को एक महान अनुष्ठान के रूप में देखा जा सकता है। इस उपक्रम के प्राण तो स्वयं आचार्यश्री तुलसी हैं। उनका आशीर्वाद सबमें प्राण भरता रहता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ इस अनुष्ठान के संप्रेरक थे। उनकी सहज प्रेरणा सबमें ऊर्जा भर देती थी। आचार्यश्री महाश्रमण का समयानुकूल मार्गदर्शन इस अनुष्ठान को गतिशील बनाए रखने में योगभूत बनता रहा।

आचार्यत्रयी के अनुग्रह से इस अनुष्ठान में जो-जो संभागी बने, वे अपने-आपको सौभाग्यशाली अनुभव कर रहे हैं। बिना सौभाग्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण यज्ञानुष्ठान में आहुति देने का अवसर किसे मिल सकता है। जिनको यह दुर्लभ मौका मिला, वे अपने जीवन के उतने पलों को सार्थक मान रहे हैं। उन सबकी ओर से बीसवीं सदी के महापुरुष को आस्था का अर्घ्य समर्पित करते हुए सात्विक आह्लाद की अनुभूति हो रही है।

तुलसी वाङ्मय : एक झलक

आत्मकथा साहित्य

1. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
2. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
3. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
4. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
5. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
6. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
7. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
8. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
9. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
10. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
11. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
12. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
13. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
14. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
15. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
16. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
17. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
18. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
19. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
20. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
21. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
22. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
23. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
24. मेरा जीवन : मेरा दर्शन
25. मेरा जीवन : मेरा दर्शन

गद्य साहित्य

26. महावीर : जीवन और दर्शन
27. हे प्रभो! यह तेरापंथ
28. तेरापंथ का प्राणतत्त्व
29. क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु
30. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य
31. महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी
32. अध्यात्म : अन्तस का स्पर्श
33. निर्ग्रन्थ प्रवचन ही परम सत्य है
34. अर्हत ने कहा
35. जैन दर्शन : आत्म दर्शन
36. जैन तत्त्वविद्या
37. अहिंसा : अमृत का महासागर
38. धम्मं सरणं पवज्जामि
39. जैन जीवनशैली
40. निर्माण : नए मानव का
41. प्रेक्षाध्यान : अध्यात्म का सोपान
42. अणुव्रत : गति प्रगति
43. अणुव्रत के आलोक में
44. अणुव्रत : नैतिकता का शंखनाद
45. शिक्षा : रूपान्तरण की प्रक्रिया
46. सन्देश : देश के नाम
47. दोनों हाथ : एक साथ
48. कुहासे में उगता सूरज
49. सार्थकता संवाद की
50. मेरी अनुभूतियां : मेरी कृतियां
51. सीख सुमत
52. तुलसी साहित्य की बोधकथाएं

प्रवचन साहित्य

53. बून्द बून्द से घट भरे
54. अन्तर के पट खोल
55. आगे की सुधि लेई
56. मंजिल की ओर
57. मन की गांठें खोल
58. काल करे सो आज कर
59. माला तो मन की भली
60. जोत जले अब ज्ञान की
61. संयम ही जीवन है
62. अवसर के महंगे मोती
63. भोर भई
64. संभल सयाने
65. घर का रास्ता
66. मानवता मुस्काए
67. ज्योति जले : मुक्ति मिले
68. धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई
69. धम्मो सरणमुत्तमं
70. ताव धम्मं समायरे
71. रे धार्मिको! विचारो
72. धर्म की लौ जलाएं हम

काव्य साहित्य

73. माणक-डालिम-चरित्र
74. कालूयशोविलास-1
75. कालूयशोविलास-2
76. मगन चरित्र
77. सेवाभावी मुनि चम्पक
78. लाडां-वदना-सुजस
79. भरत-मुक्ति
80. चन्दन की चुटकी भली
81. आत्मोदय की ओर
82. आत्मा के आसपास
83. श्रावक-संबोध
84. पण्णा समिक्खए
85. तेरापंथ-प्रबोध : सम्बोध
86. नन्दन निकुंज
87. सोमरस
88. सुधारस
89. तुलसी-पदावली

संस्कृत साहित्य

90. जैनसिद्धान्तदीपिका
91. भिक्षुन्यायकर्णिकामनोनुशासने
92. काव्यामृतम्
93. निबन्धनिकुरम्बम्

पत्र : सन्देश : संवाद साहित्य

94. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-1
95. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-2
96. पत्र : साधु-साध्वियों के नाम-3
97. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-1
98. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-2
99. सन्देश : श्रावक समाज के नाम-3
100. सन्देश : राष्ट्र नेताओं के नाम
101. संवाद : शिख़र पुरुषों के साथ
102. संवाद : प्रबुद्ध पुरुषों के साथ

सूक्त साहित्य

103. तुलसी सुभाषितम्-1
104. तुलसी सुभाषितम्-2
105. तुलसी सुभाषितम्-3
106. तुलसी सुभाषितम्-4
107. तुलसी पद्य साहित्य सन्दर्भ कोश-1
108. तुलसी पद्य साहित्य सन्दर्भ कोश-2

भारत जैन महामंडल द्वारा सर्वोच्च अलंकरण 'जैन समाज रत्न' से सम्मानित श्री कन्हैयालाल छाजेड़

समग्र जैन समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए, जैन संस्कृति एवं परंपरा के संरक्षण की दिशा में सतत प्रयत्नशील भारत जैन महामंडल समग्र जैन समाज की जानी-मानी संस्था है। इस वर्ष संस्थान के कर्मठ अध्यक्ष श्री रमेशजी धाकड़ के नेतृत्व में मुंबई में आयोजित कार्यक्रम में पहली बार जैन समाज की चार श्रावक हस्तियों को सम्मानित कर एक गौरवशाली परंपरा का शिलान्यास किया है।

जैन समाज रत्न अलंकरण से सम्मानित होने वाले चार व्यक्तियों में तेरापंथ समाज के श्री कन्हैयालाल छाजेड़, दिगम्बर समाज के श्री आर. के. जैन, मूर्तिपूजक समाज के श्री चम्पालाल वर्धन, स्थानकवासी समाज के श्री कांतिलाल जैन थे। यह अलंकरण उन विशिष्ट व्यक्तियों को दिया गया, जिन्होंने अपनी कार्यकुशलता, संगठन-क्षमता, बौद्धिकता एवं दानवीरता से जैन शासन की प्रभावना की है।

जैन समाज रत्न अलंकरण से सम्मानित श्री कन्हैयालाल छाजेड़ वर्तमान में तेरापंथ धर्मसंघ के सर्वोच्च मंच तेरापंथ विकास परिषद के सम्माननीय संयोजक हैं। 78 वर्षीय छाजेड़ तेरापंथ धर्मसंघ की श्रावक परंपरा की पहचान हैं। सहज, सरल, मृदुभाषी, धीर-गंभीर, लेखक, विचारक, मुखर प्रवक्ता जैसी अनेक विशेषताओं के धनी हैं। इनका व्यक्तिगत जीवन भी संयम और सादगी का उदाहरण है। तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्यों के अतिविश्वस्त व्यक्तियों में से एक हैं। ये विगत छः दशकों से तेरापंथ धर्मसंघ की विविधमुखी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते रहे हैं। अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद के तीन वर्ष तक केंद्रीय अध्यक्ष रहे। इन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोच्च संस्था जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष के दायित्व का एक दशक तक निर्वहन किया। महासभा के मुख पत्र **जैन भारती** मासिक के प्रधान संपादक के रूप में भी अपनी सेवाएं दे चुके हैं। इसके अतिरिक्त अनेक संघीय एवं सामाजिक संस्थाएं आपके सतत सहयोग, परामर्श एवं सहकार से लाभान्वित होती रही हैं।

आपकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने 'शासन सेवी' और आचार्य महाश्रमण ने 'संघसेवी' संबोधन से संबोधित किया था। इससे पूर्व युवा-शक्ति की ओर से अपने सर्वोच्च अलंकरण 'युवक रत्न' से भी आपको नवाजा जा चुका है। वर्तमान में आप तेरापंथ विकास परिषद के संयोजक हैं, जो आचार्यों की शुभदृष्टि से निर्मित मंच है। साधु संस्था के बाद श्रावक समाज में आप पहले व्यक्ति हैं जिन्हें यह सम्मान मिला है।

श्रीमान छाजेड़जी ने आयोजित कार्यक्रम में कहा कि यह सम्मान मेरा नहीं, संपूर्ण तेरापंथ समाज का सम्मान है। गुरु परंपरा एवं धर्मसंघ की कृपा का प्रसाद है जिनकी दृष्टि से वे आज इस मुकाम तक पहुंचे हैं। आचार्यश्री तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष में आचार्यश्री तुलसी से अनुप्राणित, प्रेरित, संप्रेषित एवं श्रावक कार्यकर्ता का इस रूप में सम्मानित होना सिर्फ छाजेड़ साहब के लिए ही नहीं वरन संपूर्ण तेरापंथ समाज के लिए गर्व का विषय है। सबकी ओर से हार्दिक बधाई।

अहिंसा यात्रा मंगलभावना अनुष्ठान : एक आह्वान

परम पावन आचार्यश्री महाश्रमण 9 नवंबर 2014 को भारत की राजधानी दिल्ली से अहिंसा यात्रा का शुभारंभ करेंगे। देश के विभिन्न प्रांतों और विदेशों में होने वाली इस यात्रा को लेकर जनता का उल्लास और उत्सुकता चरम पर है।

आचार्यवर की यह प्रलंब यात्रा निर्विघ्न रहे, सफलता के शिखरों का स्पर्श करे और पूज्यप्रवर का स्वास्थ्य निरामय रहे, यह हर दिल की भावना है। इस भावना की अभिव्यक्ति के लिए 9 नवंबर 2014 को 'अहिंसा यात्रा मंगलभावना अनुष्ठान' का आयोजन किया जा रहा है।

संभागिता : इस अनुष्ठान में साधु-साध्वियां व समणश्रेणी के सदस्य, तेरापंथ समाज, अन्य जैन व जैनेतर समाज का कोई भी व्यक्ति संभागी बनकर अपनी भावांजलि अर्पित कर सकता है।

करणीय तप : अनुष्ठान में संभागी व्यक्ति 9 नवंबर 2014 को उपवास/आयंबिल/ एकासन/अन्न परिहार का प्रयोग करे।

करणीय जप : अनुष्ठान में संभागी व्यक्ति उस दिन प्रातः 10 से 11 बजे के बीच 15 मिनट **संती संतिकरे लोए** का जप करे।

आह्वान : साधु-साध्वियां और समण श्रेणी के सदस्य जनता को इस अनुष्ठान में संभागी बनने की प्रेरणा प्रदान करें। हम सभी कार्यकर्ता स्वयं इस अनुष्ठान में संभागी बनें तथा दूसरों को भी इस अनुष्ठान से जोड़ कर इसे भव्य रूप दें।

निवेदक

कमल कुमार दुगड़

संयोजक

अहिंसा यात्रा प्रबन्धन समिति

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1

के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN

A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती, नवम्बर, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 अक्टूबर, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।